पाण्डुरंतनुशीतंचतद्दुग्धंशुद्धमादिशेत् ॥

जो दूध जल में डालनेसे मिलजावे उत्तम वर्णहो, और जिस में तंतु न होवें रंगतमें कुछ पिलाई लिये हो हलका और शीतल हो उस को शुद्ध समझना चाहिये ।

पितायदितुवालस्थ विदध्यादुपमातरम् ।
सुविचार्यगुणान्दोषान् कुर्याद्धात्रींतदेदृशीम् ॥
सवर्णांमध्यवयसां सच्छीलांमुदितांसदा ।
शुद्धदुग्धांबहुक्षीरां सवत्सामतिवत्सलाम् ॥
स्वाधीनामल्पसंतुष्टां कुलीनांसज्जनात्मजाम् ।
कैतवेनपरित्यक्तां निजपुत्रदृशांशिशौ ॥

यदि माता के दूध न होवे और धाय रखनी होय तो उस के गुण दोषों को विचार करके ऐसी धाय रक्खे जो अपनी जाति की हो न छोटी न बड़ी आयु-वाली हो, गर्भवती, सदैव प्रसन्न रहने वाली जिस के शुद्ध और बहुत सा दूध हो लड़के वाली, अति दयालु स्वाधीन हो थोड़ा देने से प्रसन्न हो जाय अच्छे कुल की और सज्जन की बेटी, कपट रहित, और बालक में अपने पुत्रके समान प्रीति रखने वाली, ऐसी धाय हो परन्तु आजकल भारतवर्ष में उक्त लक्षणों से विपरीत लक्षणों वाली मिलती हैं ।

तत्रमाताप्रशस्तांगी चारुवस्त्रापुरोमुखी ।
उपविश्यासने सम्यग्दक्षिणंस्तनमम्बुना ॥
प्रक्षाल्येषत्परिस्राव्य मंत्राभ्यामभिमंत्रितम् ।
उदङ्मुखंशिशुंक्रोडे शनैःसंधार्यपाययेत् ॥

माता अथवा धाय सुन्दर देह वाली, उत्तम वस्त्रों को धारण करके, सन्मुख आसन पर बैठ कर अपने देह के स्तन को प्रथम जल से धोय डाले फिर उसको दबाकर थोड़ा सा दूध निकाल देवे दो फिर मंत्रों से अभिमंत्रित करके उत्तर की ओर मुख करके बालक को शनैः २ गोदी में लेकर दूधपिलावे

अस्रावितंस्तनंबालः पिबन्स्तन्येनभूयसा ।
पूर्णस्रोतावनीकासश्वासैर्भवतिपीड़ितः ॥

जो स्त्री बिना दूधके टपकाये बालक को पिलाती है तो ऐसे दूधके पीने से सब छिद्र रुककर बालक वमन, खांसी और श्वास से पीड़ित होताहै॥

यथोक्तविधिना बालंमासिषष्ठेऽष्टमेऽथवा।
अन्नंसंप्राशयेत्किंचित्ततस्तद्वर्द्धयेत्क्रमात् ॥

बालक का छठे महीने अथवा आठवें महीने शास्त्रोक्त विधिसे अन्न प्राशन करवावे फिर उसको धीरे २ बढ़ावे, ।

बालमंकेसुखंदध्यान्नचैनंतर्ज्जयेत्क्वचित् ।
सहसाबोधयेन्नैव नायोग्यमुपवेशयेत् ॥
नाकृष्यस्थापयेत्क्रोडे नक्षिप्रंशयनेक्षिपेत् ।
रोदयेन्नक्वचित्कार्य्यं विधिमावश्यकंविना ॥
तच्चित्तमनुवर्त्तेत तंसदैवानुमोदयेत् ।
निम्नोच्चस्थानतश्चापिरक्षेद्बालंप्रयत्नतः ॥

बालक को सुख से गोद में लेवे जिस से उस को किसी प्रकार का दुःख न हो कभी भी उस को तर्जना न करे, और सहसा जगावे भी नहीं, जब तक बैठना न सीखे तब तक बैठावे भी नहीं, और एक साथ ही खींच छाती पर भी न रक्खे और जल्दी से खाट पर भी न पटक देवे, आवश्यक औषध देना तेल लगाना, उबटना, काजल, इत्यादि कर्मों के बिना बालकको रुलावे नहीं, बालक के चित्तानुसार ही माता बरताव करे और सदैव उस को प्रसन्न करती रहै, तथा सावधानी से ऊंचे नीचे स्थानों से इस की रक्षा करती रहै, ऐसा न हो कि कहीं से गिर पड़े ॥

अभ्यंगोद्वर्त्तनंस्नानं नेत्रयोरंजनंतथा ।
वसनंमृदुयत्तच्च तथामृद्वनुलेपनम् ॥
जन्मप्रभृतिपथ्यानि बालस्यैतानिसर्वथा ।

तेल का लगाना, उबटना करना, स्नान, नरम २ नए वस्त्रों का पहनना तथा नरम वस्तुओं का लेपकरना यह सब कर्म बालक के लिये जन्मसे ही हितकारीहैं॥

तुलाराम शास्त्री हाईस्कूल कांगड़ा ॥

श्रीभतुण्डायनमः ॥ (श्रीस्वामिब्रह्मानन्दकृत भजनम्)

नाम हरीका दिलसे प्यारे कभी भुलाना ना चहिये ।
पाकर नरका बदन रतको खाक मिलाना ना चहिये ॥ (टेक)
सुन्दरनारी देख पिआरी मनको लुभाना ना चहिये, ।
जलति अगनमें जान पतङ्ग समान समाना ना चहिये, ॥
बिन जाने परिणाम कामको हाथ लगाना ना चहिये ।
कोई दिनका ख्याल कपटका जाल बिछाना ना चहिये ॥ नामहरीका०(१)
यह माया बिजलीका चमका मनको जमाना ना चहिये ।
बिछड़ेगा सयोग भोगका रोग लगाना ना चहिये ॥
लगे हमेशा रङ्ग भङ्ग दुर्जनके जाना ना चहिये ।
नदी नावकी रीति किसीसे प्रीति लगाना नाचहिये ॥ नामहरीका०(२)
आन्धक जनके हेत पापका खेत जमाना ना चहिये ।
अपणे पादपर अपणे कर कर चोट लगाना ना चहिये ॥
अपणा करणा भरणा दोष किसी पर लाना ना चहिये ।
अपणी आंख है मद चदको दो बतलाना ना चहिये ॥ नामहरीका०(३)
कारण जो शुभ काज आज कर देर लगाना ना चहिये ।
कल जाने क्या होग कालको दूर पिछाना ना चहिये ॥
दुर्लभ तनको पाय जाय विषयों में गमाना ना चहिये ।
भव सागरमें नाव पाव चक्कर में डुबाना ना चहिये । नाम हरीका० (४)
दारादिक सब गेर फेर तिन में अटकाना ना चहिये ।
करी बगन के ऊपर फिर कर दिल ललचाना ना चहिये ॥
जान आपनो रूप कूप गृह में लटकाना ना चहिये ।
पूरे गुरुको खोज मजहब का बोझ उठाना ना चहिये । नामहरीका०(५)
बचा चाहे पापन से मनसे मौत भुलाना ना चहिये ।
जो है सुख की लाग तो कर सब त्याग फिराना ना चहिये ।
जो चाहे तू ज्ञान विषय के बाण बिधाना ना चहिये ।
जो है मोक्ष की आश सङ्ग की पाश फंसाना ना चहिये । नामहरीका०(६)
परमेश्वर है तन में बन में खोजन जाना ना चहिये ।
कस्तूरी है पास मिरग को घास सुंघाना ना चहिये ॥
कर सतसंग विचार निहार कभी बिसराना ना चहिये ।
बिन सतजनके कोटि जतनसे पर पद पाना ना चहिये । नामहरीका०(७)
आत्मसुख को भोग भोग में फिर भटकाना ना चहिये ।

पाई जिसने खांड छांड तिस को खल खाना ना चहिये ॥
यह जग स्वप्न ज्ञान ध्यान से मन को डुलाना ना चहिये ।
ब्रह्मानन्द को हेर फेर भव में भरमाना ना चहिये ॥
नामहरी का दिलसे प्यारे कभी भुलाना ना चहिये (८)

(श्रीमतुण्डायनमः)

॥ श्रीदयानन्दस्वामिलिखितलेखपरामर्शः ॥

अथ तेषां प्रकारः। तत्रादौ ब्रह्मयज्ञान्तर्गतसन्ध्याविधानं प्रोच्यते–इति पञ्चमहायज्ञविधिपुस्तकप्रथमपृष्ठे ॥

(समीक्षा) पञ्चैव महायज्ञाः–तान्येव महासत्राणि भूतयज्ञो मनुष्ययज्ञः पितृयज्ञो देवयज्ञो ब्रह्मयज्ञइति–स्वाध्यायो वै ब्रह्मयज्ञइति शतपथ प्रामाण्यात्–(ब्रह्मयज्ञान्तर्गतसन्ध्येति) वचनं न सञ्जाघटीतीति–तद्बाधकबाधकप्रमाणदानसामर्थ्यञ्चेदुत्तरणीयमिति ॥

(७) (पृ० ६) अथेन्द्रियस्पर्शः ॥

ओंवाक्वाक्–ओंप्राणःप्राणः–ओंचक्षुःचक्षुः–ओंश्रोत्रं श्रोत्रम्–ओंनाभिः–ओं हृदयम्–ओंकण्ठः–ओं शिरः–ओं बाहुभ्यां यशोबलम्–ओंकरतलकरपृष्ठे ॥

भाष्यम्–एभिः सर्वत्रेश्वरकृपया स्पर्शः कार्यः सर्वदेश्वरकृपयेन्द्रियाणि बलवन्ति भवन्त्वित्यभिप्रायः ॥

(समीक्षा) पायूपस्थं पाणिपादौ वाक् चेन्द्रियसङ्ग्रहः ॥
उत्सर्ग आनन्दादानगत्यालापाश्च तत्क्रियाः ॥ १ ॥
मनःकर्णन्तथानेत्रं रसनाचत्वचासह ॥
नासिकाचेतिषट्तानि धीन्द्रियाणिप्रचक्षते ॥ २ ॥

इत्यादिसर्वशास्त्रराद्धान्तत्रिनिगमकप्रामाण्यादेतद्व्यतिरिक्तानां प्राणादीनामिन्द्रियसञ्ज्ञाव्यवहृतिविधिविधानमसमञ्जसं द॰नं॰ स्वाम्युक्तम् ॥ हृदयशब्देन—हृदयं मनउरसोरितिकोशप्रमाणतया मनोग्रहणमिति चेन्न तत्स्पर्शसम्भवानुपपत्तेः । अतस्तस्यापि पूर्वोक्तदोषापत्तिपतनमेव वरीवृत्यते॥ भाष्यमित्यपि पदलेखवैयर्थ्यम् तल्लक्षणघटकसङ्गत्यसङ्गप्रसङ्गात्॥ एभिस्सर्वत्रेश्वरप्रार्थनया स्पर्शःकार्यइति तत्करणे किम्प्रयोजनं कीदृशी च प्रार्थना, सापि नोद्घाटिता—अपि चैषां मन्त्राणां कुत्र वेदे भवत्युपलब्धिरिति सर्वं याथातथ्येन प्रतिपादनीयम् ॥

(३) (स॰ प्र॰ पृ॰ १३५ पं॰ १८) नानाविधानिरतानि विविक्तेषूपपादयेदिति श्री*द॰नं॰लिखितपरिव्राजक नानाप्रकारतावच्छेदकावच्छिन्न रत्नवितरणशासनहेतुकमनुस्मृतिपद्यार्द्धप्रमाणप्रामाण्यं सत्यमसत्यं वेत्युभयत्र यत्तथ्यं परामृश्य तत्समाधेयमित्युत्तराभिलाषी—

गौरीशङ्करशास्त्री भट्ट सिटी

समाजस्थ महाशयों से निवेदन

हे महाशयो ! आर्यसमाज का चौथा नियम यह है कि सत्य के ग्रहण और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये—परंतु बड़े २ बुद्धिमान् समाजस्थ महाशय सत्यार्थप्रकाशादि में प्रत्यक्ष शास्त्रविरुद्ध महाअशुद्ध सर्वथा असत्य और असमंजसादि लेख देखकर उन का त्याग तो नहीं करते किंतु आग्रह ही करते हैं यदि उक्त नियमानुसार सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करें तो बहुत ही उत्तम हो-सत्यार्थ प्रकाश मुद्रित सन् १८८४ के पृ-

* श्री द॰ नं॰ लिखितो यः—परिव्राजकाय नानाप्र॰ पद्यार्धप्रमाणस्तस्य-प्रामाण्यमिति विग्रहः ॥

पृ० २१५ में लिखा है कि ब्राह्मण पुस्तकों में बहुत से ऋषि महर्षि और राजादि के इतिहास लिखे हैं और इतिहास जिस का हो उसके जन्म के पश्चात् लिखा जाता है वह ग्रंथ भी उस के जन्मे पश्चात् होता है वेदों में किसी का इतिहास नहीं–किसी मनुष्य की संज्ञा वा विशेष कथा का प्रसंग वेदोंमें नहीं इति· हम ने इस के उत्तर में ब्राह्मणसर्वस्व भाग १ मासाङ्क ५।६ में ऋग्वेद से त्रित ऋषि और देवापि शंतनु आदि के ५ इतिहास निरुक्तकार की व्याख्या सहित छपवाये थे इसी प्रकार यजुर्वेद और अथर्ववेद से अनेक ऋषि महर्षि आदि के नाम तथा इतिहास दयानंद के मूल सिद्धान्त की हानि नामक पुस्तक में मुद्रित कराये परंतु यह न सुना कि समाजस्थ महाशयों ने हमारे सत्य लेख का ग्रहण और सत्यार्थ प्रकाश के असत्य का त्याग किया– वस्तुतः चारों संहिताओ में अनेक ऋषि महर्षि आदि के नाम और इतिहास स्पष्ट लिखे हैं बुद्धिमानों को चाहिये कि पक्षपात को छोड़कर यथार्थ निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करें अंत में ऋग्वेद संहिता का एक मंत्र सायणाचार्य के भाष्य तथा निरुक्तकार की व्याख्या सहित लिखते हैं जिस में पांच महर्षियों के नाम प्रत्यक्ष हैं तथाहि–

प्रियमेधवदत्रिवज्जातवेदो विरूपवत्। अङ्गिरस्वन्महिव्रत प्रस्कण्वस्य श्रुधीहवम् ॥ ऋग्वेद० मं० १ अ० ९ सू० ४५ मं० ३

भाष्यम्:– हे महिव्रत प्रभूतकर्मन् जातवेदोऽग्ने प्रस्कण्वस्य पुत्रस्य महर्षेर्हवमाह्वानं श्रुधि शृणु तत्र चत्वारो दृष्टान्ताः प्रियमेधात्रिविरूपाङ्गिरो नामका एतेषामाह्वानं यथा शृणोषि तद्वत्। अत्र निरुक्तम्। प्रियमेधः प्रिया अस्य मेधा यथैतेषामृषीणामेवं प्रस्कण्वस्य शृणु ह्वानं प्रस्कण्वः कण्वस्य पुत्रः कण्वप्रभवो यथा प्राग्रमिति विरूपो नानारूपो महिव्रतो महाव्रत इति च। अर्थात् हे महिव्रत प्रभूत कर्मन् जातवेदोऽग्ने कण्वपुत्र प्रस्कण्व महर्षि के हवम् नाम आह्वान को सुनो जैसे प्रियमेध अत्रि विरूप और अंगिरा के आह्वान को सुना है। निरुक्त का प्रमाण ऊपर संस्कृत में लिखा गया वेद के उक्त एक ही मंत्र में प्रियमेधादि पांच महर्षियों के नाम स्पष्ट हैं निरुक्तकार और सायणाचार्य ने भी अपने २ व्याख्यान में उक्त नाम महर्षियों ही के लिखे हैं अब बुद्धिमान् लोग धर्म से कहें कि सत्यार्थ प्रकाश का यह लेख कि किसी मनुष्य की संज्ञा वेदों में नहीं सर्वथा असत्य नहीं तो

क्या है ? इस के अतिरिक्त दयानंद जी ने अपने बनाये यजुर्वेद भाष्य के पृष्ठ ११०९ में श्रुति की व्याख्या में वामदेव ऋषि लिखा है इस से भी सत्यार्थप्रकाश का पूर्वोक्त लेख असत्य ही ठहरा सज्जनों को सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना अवश्य उचित है ॥ जगन्नाथदास मुरादाबाद

श्रीहरिः

कुछ दिन हुए जब कि श्रीयुत पं० ज्वालाप्रसाद जी विद्यावारिधि तथा व्याख्यान वाचस्पति पं० दीनदयालु शर्मा, वाणीभूषण पं० नन्दकिशोर जी, गोस्वामी लक्ष्मणाचार्य जी तथा महोपदेशक पं० लक्ष्मीदत्त जी आदि महानुभावों के अमृतमय व्याख्यानों को श्रवण कर यहां के वासी कृतकृत्य हो चुके हैं और वर्त्तमान में श्रीयुत पं० शिवप्रसाद शर्मा जी के विशेष उद्योगसे धर्मसभा का कार्य अच्छे प्रकार सम्पादन हो रहा है। यद्यपि सनातनधर्म की उन्नति होनेसे प्रायः सब ही नगरवासी बड़े आनन्दित हैं पर दो चार दयानन्दी चूहे अपने बिलों में बैठे कतरव्योंत करने लगे और अपने मतकी घोषणा करने के विचार से मुरसट्टीराम को बुलाया जिन्हों ने दो तीन व्याख्यान यहां वहां दिये और इसी कारण दयानन्दी महाशयोंने कुछ प्रबलता जानकर बरसाती मेंढकों के समान टर्र टूं करना आरम्भ किया एक दिवस दोनों समुदायों की बैठक बाजार में समीप ही होगई जिस में से सनातनधर्म सभा ने उनके मत की अच्छे प्रकार समीक्षा की, उस दिवस दयानन्दियों के व्याख्यान में कोई आदमी नहीं गया तब लज्जित हो व्याख्यान न देकर अपने घर चले गये।

ता० २ सितम्बर को श्रीगणेश जी की स्थापना बड़ी धूमधाम के साथ की गई और सात दिन तक अच्छे व्याख्यान कथा और हरिकीर्तन आदि से आनन्दोत्साह होता रहा।

इसी बीच में एक इलाहाबाद के पं० जी आगये और उन्हों ने दयानन्दियों से दो दिन शास्त्रार्थ कर उन के मत को अच्छी तरह निर्मूल सिद्ध कर दिखाया जब से सनातनधर्म सभा ने उन के मत की पोल सभा में खोलना आरम्भ की तब तो दयानन्दी पं० मुरसट्टीराम तथा उन के समर्थक डा० रामनिवाजसिंह तथा गिरजाप्रसाद आदिक चुप के से ऐसे भागे कि उन का पता भी न चला कि कब और कहां से भाग गये।

श्रीगणेशोत्सव की समाप्ति के दो दिन पहिले पं० नन्दकिशोर जी वाणीभूषण आगये और गणेशतत्त्व पर व्याख्यान दिया।

दूसरे दिन श्रीगणेश जी की सवारी बड़ी धूमधाम से निकाली गई और निर्विघ्न उत्सव समाप्त किया गया ॥

सन्ध्या को प० नन्दकिशोर जी का व्याख्यान ईश्वरावतार विषय पर १२०० से अधिक पुरुषों की उपस्थिति में हुआ जिस में पं० जी ने अच्छे प्रमाण और युक्तियों द्वारा ईश्वर का अवतार लेना सिद्ध किया ।

अन्त में सत्यार्थप्रकाश की जो दयानन्दियों का मान्य ग्रन्थ है अच्छे प्रकार समीक्षा की लोग सुन २ कर ध्यान के साथ आनन्द प्रगट करने लगे । दयानन्दी महाशयों का मुख पीला पड़ने लगा निदान पं० जी ने दयानन्दियों को भरी हुई सभा में चैलेंज दिया कि जो सत्यार्थप्रकाश के कल्पित लेखों को ठीक प्रमाणित कर दे उसे १०) रुपया मैं अपने पास से दूंगा पर दयानन्दी महाशयों के तो होश हवा होगये थे उन में इतनी शक्ति कहां थी कि उत्तर दे सकें ।

पं० जी ने सनातनधर्म की धूम मचादी और जब देखा कि दयानन्दी पं० मुरलीधराम बिना उत्तर दिये इस नगर से भाग गये तब वह भी आवश्यक कार्य होने के कारण दूसरे दिन जबलपुर को चले गये ।

सनातनधर्म की सनातन से जय होती आई है और होगी ।

अब यहां के दयानन्दी भाई बिलकुल चुप हो गये हैं और आशा है कि वे अपने विरुद्ध विचारों को भी परित्याग कर देवेंगे क्योंकि उन के मुखिया ठा० रामनिवासमसिंह अब केवल छः आने ही आर्यसमाज में रह गये हैं दो तीन और महाशय भी उस मार्ग का अवलम्बन छोड़ने को विचार करने लगे हैं आशा है कि शीघ्र ही यहां की दयानन्दी समाज की इति श्री हो जावेगी ।

अन्त में मैं यहां के धर्मप्रेमी पुरुषों को धन्यवाद देता हुआ इस लेख को समाप्त करता हूं ॥

आप का दास — वृन्दावन ज्योतिषी

अ० सेक्रेटरी सनातनधर्म सभा कटनी मुड़वारा

स्वामी जी की मूर्खता ॥

ब्रा० स० भा० ३ अ० ११ में „ ज्योतिषखण्डन शीर्षक " मेरा लेख छपा

था. सो उक्त लेख को देख कर मेरठ के स्वामी तुलसीराम वेद प्रकाश के वर्ष ९ मा० ७–पृ० १३३ में ज्योतिष के ग्रन्थों को असत्य तथा अशुद्ध सिद्ध करने के अभिप्राय से. जातकाभरण पर विषम दृष्टि से जलते हुऐ. लिखते हैं कि–

" पञ्चाशीतिभर्वैदायुर्वैशाखस्याद्यपक्षके ॥
सार्पेष्टम्यांभृगोर्वारे, निधनंपूर्वयामके ॥

भा०–मेषराशि वाले की आयु ८५ वर्ष की. वैशाख मास के आद्यपक्ष की अष्टमी तिथि शुक्रवार आश्लेषा नक्षत्र के पूर्वयाम में मृत्यु होती है।

सो यह योग अशुद्ध है आश्लेषा कभी भी इस तिथि को नहीं होती. (आद्यपक्ष का अर्थ स्वामी जी नें कृष्णपक्ष का किया है) धन्य है स्वामी जी यह योग आप ने अशुद्ध क्यों बताया ? देखिये इसी साल का पंचांग १२मई०५ के दिन अष्टमी तिथि शुक्रवार और आश्लेषा नक्षत्र सभी कुछ है ॥
कृष्णपक्ष में जो आप की दृष्टि गई है. सो समाज के महोपदेशक तथा विषम दृष्टि होने का कारण है। आद्यपक्ष का अर्थ कृष्णपक्ष करना इस से अधिक मूर्खता और क्या हो सक्ती है।

सम्पादक जी समाजी होने से पूर्व अमरकोश शायद आपने पढ़ा होगा सो देखिये ॥

" पक्षौपूर्वापरौशुक्लकृष्णौमासस्तुतावुभौ ,,

और देखिये सूर्यसिद्धान्त १ । ४९

मासीकृतायुतामासै र्मधुशुक्लादिभिर्गतैः ।
अर्थ, चैत्रशुक्लाद्यवधिभूतैर्गतमासैर्युताः ॥

अहर्गण साधने के लिये चैत्र शुक्लपक्ष से विगत मास की संख्या मिलावे। आप के मतानुसार कृष्णपक्ष से मास गणना करें तो अहर्गण अशुद्ध हो गणित की परिपाटी नष्ट हो जाय. अस्तु प्रार्थना यह है कि स्वा० तु० कुछ ज्योतिष पढ़ लेवैं. तब ज्योतिष के विषय में कुछ लिखा करें। स्वामी इस ही बल से जातकाभरण का खण्डन करने चले थे ? धन्य है ॥

एक प्रार्थना यह है कि वे० प्र० में इस लेख का उत्तर आप कुछ लिखैं तो एक कापी मेरे पास भी भेज देवें।

आप का–रामदत्त ज्योतिर्विद भीमताल, नेनीताल ॥

क्रम से लिखा गया है। धर्म, नित्य कर्म की खास २ बातें प्रातःस्मरणादि गणेश विष्णु, शिव, आदित्य सूर्य नारायण, देवी श्री, महालक्ष्मी, सरस्वती, गुरु, माता और पिता इन देवताओं की स्तुति प्रार्थना करने सेवादि करने के उत्तम २ स्तोत्र इस पुस्तक में हैं। तथा इस के परिशिष्ट भाग में सदाचार द्विजाति कर्म, राज कर्म, वैश्य कर्म, और सामान्य नीति विषय प्रमाणों सहित सरल सुगम भाषा में लिखे हैं। धर्मप्रेमी देशस्थ सनातनधर्मी लोगों को यह पुस्तक देखने योग्य है। वास्तव में सनातन धर्मी लोग अपने सन्तानों को बाल्यावस्था में ही यह ग्रन्थ पढ़ावें कण्ठस्थ करावें तो बहुत अच्छा हो। यह पु० सुपरफाइन सोलह पेजी कागज के १५६ पेजों में है। इस के सम्पादक—पाण्डेय सभापतिदत्त शर्मा प्रधानाध्यक्ष विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय १५३ हेरिसन रोड कलकत्ता है। इसी पते से यह पुस्तक मिल सकता है मूल्य पु० पर लिखा नहीं अनुमान ॥) होगा।

„समय दर्पण" यह पुस्तक एक सामाजिक उपन्यास रूप है। पं० रामदत्त ज्योतिर्विद मु० शिलौटी पो० भीमताल जि० नैनीताल ने बनाया और बाबा स्वरूपदास ने अपने प्रेस मुंगेर में छपाया है। इस में आ० समाजी मत का खण्डन उपन्यासी ढंग से किया गया है। पुस्तक सोलह पेजा रायल के २४ पेजों में है। मूल्य पु० पर लिखा नहीं। अनुमान)॥। वा -) होगा मिलने के दो पते ऊपर लिखे हैं॥

„भजन नवीनमत खण्डन" इस में आ० समाजी मत का खण्डन भजनों में किया गया है। भजन अच्छे हैं। बारह पेजा रायल २४ पेज का पुस्तक है मूल्य -) है मिलने का पता—लाला रामलाल वैश्य पुस्तकाध्यक्ष धर्मसभा तिलहर जि० शाहजहांपुर॥

„तिमिर नाशक भजन पचीशी" इस में मूर्तिपूजा का मण्डन और दयानन्दियों का खण्डन भजनों में किया है। बारह पेजा रायल २० पेज का पुस्तक है मूल्य -) है मिलने का पता—प० रामसहाय शस्त्रधारी हेडमुहर्रिर मुंसफी तिलहर जि० शाहजहांपुर॥

„प्लेग निवारण" इस में प्लेग से बचने के उपाय और औषधियां लिखी हैं। बारह पेजा रायल के २० पेज का पुस्तक है। मूल्य पु० पर लिखा नहीं अनुमान -) होगा। मिलने का पता—बाबू जङ्गबहादुर सिंह रईस, जमीन्दार मोखामढ़ पो० खास जि० शाहाबाद (बिहार)

„सनातन धर्म की भजन पैंतीसी” इस में ईश्वर भक्ति, दयानन्दी तथा वेश्यादि का खण्डन है। सोलह पेजा रायल ३२ पेज का पुस्तक है। मूल्य -) है मिलने का पता लाला बाबूराम व चेतराम—बीसलपुर जिला पीलीभीत ॥

“ हिन्दुधर्म प्रकाश ” इस में अवतार, मूर्त्ति पूजा हिन्दु पद, विधवा विवाह और श्राद्ध इन विषयों की अनेक शङ्काओं का अच्छा युक्ति प्रमाण सहित मंडन किया है। पु० १, पेजा डिमाई साईज का ५० पेज है मूल्य ।/ तथा “ बारह खड़ी ” यह पु० चार पेज का है इस में अकारादि वर्णों के क्रम से अच्छे चौपायी छन्दों में सब का हितकारी उपदेश है मूल्य)॥ है। दोनों पु० मिलने का पता—पं० बाबूलाल तिवारी उपदेशक सनातन हिन्दूधर्म कटरा प्रयाग

“ स्वामी दयानन्द की योग्यता तथा दश नियम खण्डन „ इस में आर्यसमाज के दश नियमों के खण्डन के साथ ही में स्वा० द० की योग्यता भी दिखलायी है। हरसाणा ग्राम निवासी पं० मधुसूदन लाल ने पु० बनाया है। १६ पेजा डिमाई के ६४ पेज का पुस्तकहै मूल्य ।) है। पु० मिलने का पता-पं० मधुसूदन लाल शर्मा ठि० नरनारायण का मन्दिर सेलवाड़ी—मुंबई—

„भोजन विधि ” इस में गरीबी और अमीरी सब प्रकार के भोजन बनाने का विधान लिखा है। रोटी, दाल, भात, खिचड़ी पूरी, तरकारी और अनेक मिठाई आदि बनाने का विधान इस में है। एकर रोटी आदि के अनेक २ प्रकार लिखें हैं। सब प्रकार के अचार चटनी मुरब्बे आदि सब ३४६ प्रकार के पदार्थ बनाना सरल नागरी भाषा में लिखा है। १६ पेजा कुराउन साइज के १४० पेज का पुस्तक है। गृहस्थों के अधिक काम का पुस्तक लेने देखने योग्य है। मूल्य ।=) है। पु० मिलने का पता—मन्हेलाल मुरलीधर प्रोप्राइटर सरस्वती विलास प्रेस—नरसिंह पुर। सी.पी. ॥

„संवत् १९६२ का भावीफल” इस पुस्तक में संवत १९६२ के महिने २ का तथा संक्रान्ति और खास २ पर्व वा तिथियों में पड़े योगों का फल ज्योतिष शास्त्र के प्रमाणों और सुगम भावार्थ करके दिखाया गया है। पंचांगों में भावी फल का इतना ब्यौरा नहीं होता है। बारह पेजा रायल ६० पेज का पुस्तक मूल्य ।)

पु० मिलने का पता—

पं० तनसुख व्यास—पाली मारवाड़ ॥

ब्रा० स० का मूल्य प्राप्ति स्वीकार ता० १४ जून से १२ अगस्त तक

६१५ दीनानाथ ब्राह्मण भीमा १-)
११९८ पं० गंगाधर शर्मा मुलतान ३॥-)
७५१ दीनानाथ ब्राह्मण इटावा १)
११३६ सेठरण छोडुदासहीरजीमुम्बई २॥)
१२०३ पं० लभूराम जी सिहोवाल २।)
१२०४ ज्वालाप्रसाद जिरोली १॥)
७९७ खुशीराम जी खैरपुर १॥)
७०६ पं० खशीराम जी मुकेरियां २।)
६१६ गुरुदत्तविद्यार्थी लाहौर १।)
८९३ पं० रामनारायण जी ज्ञानमठ १।-)
५७६ पं० देवीदत्त जी अलमोड़ा १॥≡)
२९५ पं० अनन्तरामशर्मा अलमोड़ा २॥-)
७११ प० गणेशदत्त जी कन्नौज २॥)
६८३ पं० नानकचन्द शर्मा मेरठ १॥)
१२१० पं० मधुसूदनगुजरातीवृन्दावन २॥)
८५९ बा० हरद्वारीलालजीसुनपत २।-)
८३९ बाबा सरूपदास जी मुंगेर २)
१२१६ मन्त्रीम०ध०सभाशाहाबाद २।)
१२१५ पं० गोवर्धन जी नारनौल २।)
१२१८ बा० ईश्वरदास जी मंडीपार २।)
१२२० बा०लालबिहारीजीभतना ५॥।=)
८६४ बा० कृष्णदेवनारायणलहेरिया २॥)
५५४ ठा० देवीसिंह जी पवासा २।)
३७७ पं० ब्रजनाथ शर्मा आगरा २।)
१२२४ वंशीधर चौबे हर्दुआगंज २)
७३५ पं० कृष्णशंकर नगीनाबाद २।)
१०३१ मुं० प्रतापनारायणरायबरेली २।)
१०२१ प० ज्येष्ठाराममुकुन्दजीमुम्बई २।)
७५४ ठा० दुर्जनसिंह जीअलवर २।≡)
९६३ बा० बैजनाथ जी मन्त्री २॥)

३१८ चौ० विशालसिंह जी करहल २॥)
६७३ स्वा० वेंकटाचारी जी बरेली २॥)
१०१० पं० रामगोपालजहांगीराबाद २॥-)
९७८ पं० सीताराम शास्त्री भिवानी ३।)
५५३ बा० गणेशीलाल जी प्रयाग ३॥)
७७२ पं० हरिदत्त शास्त्रीटिहरी २।)
३६ बा० सीताराम स० लखीमपुर २।)
७०१ बा० भवानीप्रसादजीदेवरीकलां २)
१०६५ बा० छक्कूलाल जी रेहकी २।)
९१२ पं० बिहारीलाल शा० नगीना २।)
९४७ पं० ब्रह्मानन्दजी पनामोर २।)
७६४ पं० मणिराम शास्त्री कोहाट २।)
१२२१ बा० कृष्णलाल जी कान्धला २।)
५७८ पं० रामदत्त जोषी अलमोड़ा ४॥=)
३८८ पं० गणेशदत्तशास्त्रीडेरागाजीखां २)
६९७ बा० गंगा प्रसाद किरावल २॥)
११२ पं० मिश्रीलाल वैद्य अलीगंज २॥)
७१० मन्त्री स० ध० सभा कन्नौज २॥)
२०८ पं० लक्ष्मीदत्त जयपुर २)
६१० पं० काशीरामशर्माडेरागाजीखां ४॥)
९६ बा पूर्णसिंह जी करौली २)
५३७ गुरुदत्त शर्मा बहरामपुर ३≡)
१२३४ पं० कल्याणजीकांजीआमदपुर २।)
५८२ मोहनलाल शर्मा मुलतान २)
२५० ला० छज्जूरामजीजगराओं १॥=)
१०११ बा० सरयूराय क्लर्क मऊनार २।)
७५२ पं० तुलाराम शास्त्री अंबाला १)
१२३३ पं० चन्द्रदत्त शास्त्री अलवर २।)
१२३२ कजनामल स० प० पियागपुर २।)
८६० पं० रामनरायणशर्मा मुलतान २)

REGISTERD No 242

ब्रा०स०सम्बन्धी पत्रादि पं०भीमसेन शर्मा सम्पादक ब्रा०स०इटावाकेपतेसे भेजिये

श्रीगणपतयेनमः ।

ब्राह्मणसर्वस्व-

THE.
BARHMAN SARVSAWA

आर्य्यम्मन्यसदार्य्यकार्य्यविरहा आर्य्यास्त्रयीशत्रव,
स्तेषांमोहमहान्धकारजनिता-ऽविद्याजगद्विस्तृता ।
तन्नाशायसनातनस्यसुहृदो धर्मस्यसंसिद्धये,
ब्राह्मस्वान्तमिदंसुपत्रममलं निस्सार्य्यतेमासिकम् ॥
धर्माधनंब्राह्मणसत्तमानां, तदेवतेषांस्वपदप्रवाच्यम् ।
धनस्यतस्यैवविभाजनाय, पत्रप्रवृत्तिःशुभदासदास्यात् ॥

भाग ४ } मासिकपत्र मासाङ्क { ४

निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः
पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥

पं० भीमसेन शर्मा द्वारा सम्पादित होकर
वेदप्रकाश यन्त्रालय-इटावा में
मुद्रित होकर प्रकाशित होता है ॥
संवत् १९६२ वि० ३१ अगस्त सन् १९०५ ई०

ब्राह्मणसर्वस्व का अगाऊ वार्षिक मूल्य डाकव्यय सहित २।) है

प्रेस नं० ८

विज्ञापन छपाने वंटाने के लिये नियम ॥

१—जो विज्ञापन ब्रा० स० में छपें वा बांटे जावें उन के सत्यमिथ्या के उत्तरदाता विज्ञापन वाले ही समझे जांयगे । इस कारण ग्राहक लोग सोच समझ के व्यवहार करें ।

२—ब्रा० स० में एक वार कोई विज्ञापन एक १ पेज से कम छपावे तो =)॥ लैनके हिसाब से लिया जायगा । तीन मास तक =)। ६ मास तक =) एक वर्ष तक -)॥ प्रति पङ्क्ति प्रतिमास लगेगा ।

३—एक वार एक पेज पूरा छपाने पर ३) लगेगा । १ पेज तीन मास तक ७) छः मास तक १२) और १ वर्ष तक २०) लगेगा ।

४—जिस किसीको विज्ञापन बंटाना हो उसकोब्रा० स० के दफ़्र सेपूछ कर ब्रा०स० का फ़ोड़ पत्र और तारीख़ छापनी चाहिये । ४ मासे तक का विज्ञापन ४) में ८ मासे तक का ५) में और १ एक तोला तक का ६) में बांटा जायगा । रु० छपाई और विज्ञापन बंटाई का पहिले लिया जायगा ॥

ब्राह्मणसर्वस्व के नियम ॥

१—यह मासिकपत्र साढ़े छः फारम ५२ पेज सायल सायज का प्रतिमास की अन्तिम तारीख़ को निकलता है ॥

२—इस का वार्षिक मूल्य डाकव्यय सहित बाहर के ग्राहकों से २।) सवा दो रुपया अगाऊ और इटावे के ग्राहकों से २) लिया जाता है ॥

३—अगला अं० पहुंच जाने पर पिछला न पहुंचने की सूचना जो ग्राहक लिखेंगे उनको पिछलाअं० विना मूल्य फिर भेजा जायगा। देर होने पर द्विवारा अं० =) प्रति के हिसाब से मिलेंगे ।

४—राजा रईस लोगों से उन के गौरवार्थ ५) वार्षिक मूल्य लिया जायगा ॥

५—पुस्तकों की समालोचनाभी इसमें यथोचित हुआ करेगी ॥

६—जो पहिला अंक नमूना का मंगाकर ग्राहक होना चाहें वे तत्काल २।) भेजें और ग्राहक होने की सूचना दें । ग्राहक न होंतो ≡) के टिकट नमूना का मूल्य भेज देवें अन्यथा द्वितीय अंक वी०पी० उनकी सेवा में पहुंचेगा ।

७—मूल्य भेजते समय ग्राहक लोग अपना नम्बर अवश्य लिखा करें । चिट्ठी पत्री नागरी वा अंग्रेज़ी में भेजा करें उर्दू के हम उत्तरदाता नहीं हैं ।

८—कहीं बदली आदि के कारण स्थानान्तर में जावें तो अपना पता अवश्य बदलवावें । अन्यथा अंक न पहुंचने के उत्तरदाता हम न होंगे ॥

९—जो ग्राहक लोग अन्य ग्राहक करावेंगे उन को यथोचित कमीशन मिलेगा और १० ग्राहक कराने वाले को १ मासिक पत्र बिना दाम मिला करेगा ॥

श्रीगणेशायनमः ॥

॥ ब्राह्मणसर्वस्व ॥

भाग ४] उत्तिष्ठतजाग्रतप्राप्यवरान्निबोधत [अङ्क ४

यत्रब्रह्मविदोयान्ति दीक्षयातपसासह ।
ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्माब्रह्मदधातु मे ॥

मङ्गलाचरणम्

यदा प्राणोऽअभ्यवर्षीद्वर्षेण पृथिवीं महीम्॥
पशवस्ततप्रमोदन्ते महोवैनो भविष्यति ॥५॥

अ०—प्राणः प्राणरूपा जीवनशक्तिर्यदा वर्षेण [वर्षतीतिवर्षो मेघः–पचाद्यच्] मेघरूपेण महीं महतीं पृथिवीमभ्यवर्षीदभितो वर्षति तत्तदा पशवः [पश्यन्तीति पशवः] मनुष्यादयः प्राणिनो महो महानानन्दो वै निश्चयेन नोऽस्माकं भविष्यतीति मन्यमानाः प्रमोदन्ते ॥

भा०—(प्राणः) प्राण रूप जीवनशक्ति (यदा) जब (वर्षेण) मेघ रूप से (महीं पृथिवीम्) इस बड़ी पृथिवी पर (अभ्यवर्षीत्) सब ओर से वर्षती है (तत्) तब (पशवः) मनुष्यादि प्राणी (महो वै नो भविष्यति) अन्नादि प्राप्ति द्वारा हम को बड़ा आनन्द मंगल होगा ऐसा मानते हुए (प्रमोदन्ते) हर्ष मानते हैं । अभिप्राय यह है कि प्राण नामक ईश्वर शक्ति ही मेघ ओषधि अन्नादि नाम रूपों से सब की रक्षा कर रही है । इसी लिये अन्न को ब्रह्म, रस को विष्णु और महेश्वर को भोक्ता कहा गया है । एक ही प्राण शक्ति स्वरूप ईश्वर अनेक नाम रूप होकर संसार को चला रहा है उस को हमारा बारम्बार नमस्कार है ॥

"स्मार्त्त धर्ममीमांसा,,

इस नामका एक पुस्तक आचार्य्य श्री मधुसूदन गोस्वामी वृन्दावन निवासी ने बनाया और महावीर प्रसाद नारायण सिंह जी रईस बरांव जि० प्रयाग ने श्री वेंकटेश्वर प्रेस मुम्बई में छपा कर प्रकाशित किया है। हमारे कई मित्रों के अनुरोध से आज इस पुस्तक पर हमे कुछ विशेष समालोचना लिखने की आवश्यकता हुई और वास्तव में उक्त पुस्तक देखने से भी सभी सनातन धर्मी इस पुस्तक पर विशेष आलोचना की आवश्यकता समझेंगे। इस की समालोचना लिखने से पहिले विष्णु भगवान् के रामकृष्णादि किसी विग्रह के सच्चे भक्त जनों [जो वास्तव में वैष्णव पद के अधिकारी हैं] को हम विनय पूर्वक प्रणाम करते हैं। और यह प्रार्थना करते हैं कि हमारे हृदय में लेश मात्र भी द्वेष वा पक्षपात नहीं है। इसी कारण हम इस लेख में भी किसी सम्प्रदाय पर कुछ आक्षेप नहीं करेंगे तथापि इस लेख में पूर्वपक्षी श्री मधुसूदन गोस्वामी वैष्णव सम्प्रदायी हैं इस कारण यदि कहीं किसी को आक्षेप का छींटा प्रतीत हो तो वे लोग हमे क्षमा करें।

इस पुस्तक की भूमिका महावीर प्रसाद नारायण सिंह जी रईस बरांव जि० प्रयाग की ओर से छपी है हमे बड़ा आश्चर्य होता है कि उक्त रईस साहब सनातन धर्म के पूर्णहितैषी हैं सो क्या मनुआदि धर्म शास्त्रों का खण्डन कराना पसन्द वा स्वीकार करलेते ?। कदाचित यही बात सच्ची हो कि रईस लोग आंखों से कम देखते पर कानों से अधिक सुनलेते हैं। इसी के अनुसार रईस साहब ने पुस्तक न देखा हो और म० गोस्वामी जी ने जैसा कह दिया हो वैसा ही ठीक मान लिया हो। इस पुस्तक की भूमिका में यह लिखा है कि "बहुत से वैष्णवन को स्वसम्प्रदाय के सिद्धान्तों का बोध नहीं है उन को आज कल के स्मार्त्त झगडाधारी महाशय अनेक कुतर्क कल्पनाओं से क्लेश देते हैं ऐसे ग्रन्थ (स्मार्त्त धर्म) से उन का बड़ा उपकार होगा" पाठकगण इस लेख से मालूम होता है कि जानो वैष्णव धर्म के गूढ़ सिद्धान्तों की महिमा इस "स्मार्त धर्म" ग्रन्थ में और कुतर्कों के जवाब वेदादि शास्त्रों के प्रमाण तथा युक्तियों से दिये होंगे। यदि ऐसा किया जाता तब आज हमें इस पर कुछ भी समालोचना लिखने की आवश्यकता नहीं होती।

सो उक्त दो बातों में से पुस्तक भर में किसी का विचार नहीं किया गया। तब जो कुछ म० गोस्वामी जी ने लिखा है वह आप के सामने आवेगा।

हमारे वरांव के रईस साहब वास्तव में स्वधर्म निष्ठ हैं उन का इस में कुछ दोष नहीं है। उनको यह बात किसी ने नहीं जतायी कि सनातन हिन्दु धर्म रूप पुरुष का एक हाथ अपने ही मदिरा पर एक शस्त्र चलाता है। वैष्णव सम्प्रदाय भी हिन्दु धर्म का हाथ है परन्तु साक्षात् वेदाशय को लेकर चले मन्वादि धर्मशास्त्र इस धर्म के प्रधान स्थान मदरा हैं। यदि रईस साहब को ऐसा ज्ञात हो जाता तो स्वव्यय से वे इस पुस्तक को कदापि नहीं छपाते। अस्तु जो हो—

मधु० गोस्वामी—हम सब से प्रथम यह देखते हैं कि स्मार्त्त शब्द का कब से व्यवहार होने लगा है। वैदिक समय में कहीं स्मार्त्त शब्द नहीं है। क्यों कि वेद में धर्म के विशेषण रूप से कहीं स्मार्त्त शब्द नहीं मिलता है। वेद में कहीं स्मार्त्त ऐसा शब्द नहीं आया न कहीं पुरुष का विशेषण आया कि इस स्मृत्युक्त धर्म के अनुयायी पञ्चदेवोपासक पुरुष स्मार्त्त हैं। पर कर्म का विशेषण कहीं २ स्मार्त शब्द मिलता है॥ स्मार्त्तवदाज्य संस्कार इत्यादि में गृह्यसूत्रोक्त कर्म स्मार्त्त शब्द से लेना इष्ट है। आज कल का सतनजा स्मार्त्त धर्म लेना इष्ट नहीं है। वेद में तो कहीं मनु आदि स्मृतियों का नाम भी नहीं है। बस (मूलं नास्ति कुतः शाखा) जब वेद के समय में स्मृति ही नहीं तब स्मार्त्त धर्म का वेद में उल्लेख कहां से होता ?॥

समीक्षक—हमने गोस्वामी जी का अनुवाद ज्यों का त्यों नहीं लिखा है किन्तु संक्षेप कर दिया है पर मतलब इस का कुछ नहीं छोड़ा है। गोस्वामी जी का संक्षेप में अभिप्राय यह है कि स्मृति और स्मार्त्त धर्म वेद मूलक नहीं किन्तु कल्पित आधुनिक हैं। गो स्वामी जी ने वेद का कोई खास समय समझा है। अर्थात् जानो अब वेद का समय नहीं है। यदि अब वेद का समय नहीं है तो श्री वैष्णवादि सभी सम्प्रदायों के लोग अब वेद का पठन पाठन क्यों करते हैं ?। अब भी वेद के शब्द तथा पुस्तक और उन के पठन पाठन प्रचार विद्यमान ही हैं किन्तु पूर्व काल में जब छापेखाने नहीं थे तब वेदपुस्तक सबकिसी को नहीं मिल सकते थे अब पहिले से बहुत अधिक प्रचार हल्ला गुल्ला हो रहा है। सनातन धर्मसभाओं में वेद भगवान् की स-

वारी निकाली जाती हैं फिर वह कौनसा कारण है जिस से सम्प्रति वेद का समय न माना जाय ? । यदि यह अभिप्राय हो कि जब तक अन्य स्मृत्यादि ग्रन्थ नहीं बने थे केवल वेद ही प्रकट हुए थे वही वेद का समय था। तो यह भी ठीक नहीं है क्यों कि जब से जब तक वेद के पठन पाठन तथा वेदोक्त यज्ञादि कर्म का अनुष्ठान अविच्छिन्न रूप से चलता है तब तक सभी वेद का समय है अब वेद का समय नहीं यह म० गोस्वामी जी की कल्पना मन मानी है। क्योंकि इस में कोई प्रमाण भी नहीं है

कदाचित् यह अभिप्राय हो कि श्रीवैष्णवादि सम्प्रदायों में वेद का आदर घट गया तथा अपने २ सम्प्रदाय के अंशों का आदर अधिक बढ़ गया है। इसी लिये सम्प्रदायी ब्राह्मणादि द्विज लोग भी सनातन वेदोक्त गायत्री आदि गुरु मन्त्रों के स्थान में द्वादशाक्षरादि मन्त्रों का आदर अधिक २ करने लगे हैं। इस लिये इतिहास पुराण तथा सम्प्रदायी ग्रन्थों का आदर सम्प्रति अधिक है वैसा वेदों का आदर नहीं है। और जब जिस का आदर वा प्रचार अधिक हो तब उसी का समय माना जायगा जैसे कि आज कल भारत वर्ष में अंगरेज गवर्नमेण्ट का समय है ।

तब इस का उत्तर यह होगा कि अब भी श्री वैष्णवादि सम्प्रदायों में जो बड़े २ विचार शील तथा बड़े २ विद्वान् हैं उन के विचार में वेद का ही गौरव सर्वोपरि समाया है । इस के उदाहरणार्थ हम श्रीमान् रामभिश्र शास्त्री जी बनारस का उदाहरण उपस्थित करते हैं। उक्त शास्त्री जी वैष्णव सम्प्रदाय के हैं तथापि उन्हों ने १०। १२ वर्ष हुए जब एक मन्त्र मीमांसा नामक निबन्ध लिखा था जिस में गायत्री आदि वेद मन्त्रों का गौरव सर्वोपरि स्थापित किया और द्वादशाक्षरादि मन्त्रों को वेद की अपेक्षा निकृष्ट कोटि में ठहरा के विद्वानों में पक्षपात रहित होने का नमूना शास्त्री जी बने थे। और स्मार्त्त कहाने वाले लोग तो अब भी सर्वोपरि वेद को ही बड़ा मानते हैं। और सनातन धर्म सभाओं का काम उठाने वाले श्री पं० दीनदयालु आदि प्रायः स्मार्त्त ही हैं। सब धर्म सभाओं के उत्सवों पर वेद भगवान् की सवारी पहिले ही दिन बड़ी धूम धाम से निकाली जाती है जिस में सम्प्रदायों के लोग भी सम्मिलित होते हैं। इस कार्यवाही से समझ लीजिये कि

सभी सनातन धर्मियों के हृदय में वेद का ही गौरव अब भी सब से अधिक है। इस लिये अब भी वेद का ही समय है। स्मृति पुराणादि का जो कुछ आदर हम सनातन धर्मियों के हृदय में है सो भी इस कारण है कि स्मृति पुराण आदि सब ग्रन्थों ने भी पेट भर २ वेद की ही महिमा गायी है। यदि कहो कि-सम्प्रदायी लोगों का अधिक भाग वेद का आदर वैसा नहीं करता कि जैसा अधिक अपने सम्प्रदायी ग्रन्थों का आदर करता है ;तो इस का उत्तर यह है कि सदा ही मनुष्यों का अधिक भाग मूर्ख अज्ञानी होता है और उत्तम कक्षा के विद्वान् विवेकी सदा ही कम होते हैं जैसे कूड़ा कर्कट सदा ही अधिक होता और रत्न थोड़े होते हैं। नेता वा प्रमाणभूत सदा विद्वान् ही होते हैं इस से सिद्ध हुआ कि अब भी सर्वोपरि वेद का ही आदर होने से वेद का ही समय अब भी बना है।

अब स्मार्त्त शब्द का विचार देखिये गोस्वामी जी कहते हैं कि "वेद में कहीं स्मार्त्त शब्द नहीं आया" जैसे कि आ० आ० समाजी कहते हैं कि वेद में श्राद्ध शब्द नहीं आया इस से श्राद्ध ठीक नहीं है वैसा ही कथन गोस्वामी जी का है। सो प्रथम तो यह गोस्वामी जी का कथन साहस मात्र इस लिये है कि वेदों की ११३१ शाखा उन के ब्राह्मण तथा १०८ उपनिषद् ये सब वेद कहाते हैं जो (लक्षन्तुवेदाश्चत्वारः) के अनुसार एक लाख श्लोक मूल पाठ है उन सब वेदों का अवलोकन आद्योपान्त न करके कह बैठना कि अमुक शब्द वेद में नहीं तो यह साहस मात्र कथन क्यों नहीं है ? सम्भव है कि इतने विस्तृत वेद में स्मार्त्त शब्द का भी प्रयोग मिल जावे तब गोस्वामी जी को लज्जित होना नहीं पड़ेगा ?। यद्यपि वेदों की सब शाखा और ब्राह्मण नहीं मिलते तथापि जितने मिलते हैं उतने ही सब देख कर गोस्वामी ने ऐसा लिखा हो यह भी सम्भव नहीं है। द्वितीय यह कि स्मृआध्याने धातु से स्मृति और स्मार्त्तादि शब्द निकले हैं सो स्मृधातु का कोई भी प्रयोग वेद में न हो यह कदापि नहीं हो सकता। और स्मृधातु का कोई भी प्रयोग मिला तो भी स्मार्त्त शब्द का वेदमूलक होना सिद्ध होगया।

यद्यपि गोस्वामीजी प्रतिज्ञा करें कि स्मार्त्त शब्द वेद के किसी पुस्तकमें नहीं और कोई वेद से स्मार्त्त शब्द निकाले तो हम अपना पराजय मान लेंगे तो सम्भव है कि परिश्रम करने पर स्मार्त्त शब्द वेद से निकाल दिया जाय। तथापि हम

पूछते हैं कि क्या यह कहीं का नियम है कि जो शब्द वेद में न हो वह माना ही न जाय। विचार कर देखो तो सैकड़ों सहस्रों शब्द ऐसे लौकिक मिलेंगे जो वेद में वैसे ही मिलने कदापि सम्भव नहीं तथापि सब लोग उन को निर्विकल्प प्रामाणिक मानते और व्यवहार करते हैं। क्या मधु० गोस्वामी प्रतिज्ञा कर सकते हैं कि जिन २ शब्दों को वे ठीक प्रमाणिक मान कर व्यवहार करते हैं उन को ठीक २ वेद में दिखा सकें। यदि ऐसी प्रतिज्ञा करें तो प्रथम अपना नाम वा ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक शब्द ही वेद में दिखा दें। जब कि वेद में न मिलने पर भी गोस्वामी जी अपने व्यवहार में अनेक शब्दों को प्रामाणिक मानते हैं। तब अन्य लोगों के लिये स्मार्त्त शब्द का खण्डन किस मुख से करेंगे?। पाणिनीय व्याकरण के अनुसार जब स्मार्त्त शब्द पुरुष वा स्मृत्युक्त धर्म का विशेषण होना ठीक शुद्ध है तब हम को उस २ अर्थ में उस का प्रयोग करने में कदापि संकोच नहीं हो सकता। जैसे (दाशरथिः—रामः) ऐसा शब्द पाणिनीय व्याकरण से सिद्ध तथा शुद्ध होने पर वेद में उस के होने न होने का विवाद किसी के मन में नहीं उठता क्योंकि वेद में होने न होने दोनों दशा में वह शब्द वैसा ही ठीक शुद्ध रहेगा।

इस के सिवाय एक बात यह भी ध्यान में रखनी चाहिये कि जैसे बीज में सूक्ष्म रूप से वृक्ष अवश्य विद्यमान है। जैसे २ जितने अवयव वा हिस्से जिस वृक्ष में स्थूल रूप से दीखते हैं वे सब वैसे ही ज्यों के त्यों सूक्ष्म रूप से उस २ वृक्ष के बीज में अवश्य हैं इसी से तो वृक्ष में वैसे भाग स्थूल हो गये। यदि बीज में न होते तो वृक्ष में आते ही कहां से?। इसी के अनुसार स्मृति पुराणादि सब वेद मूलक हैं। वेद से निकले हैं वेद सब का बीज रूप मूल है। उस वेद में यदि स्मृतियों में कहे विषय वैसे ही स्थूल रूप नहीं दीखते तो यह ठीक है क्यों कि बीज में भी वृक्ष नहीं दीखता है। पर हृदय चक्षुओं से देखो तो साफ दीख पड़ेगा कि जैसे बीज में वृक्ष है वैसे ही स्मृति पुराणादि भी वेद में सूक्ष्म रूप से विद्यमान हैं। हमे बड़ा आश्चर्य होता है कि गोस्वामी जी ने "स्मार्त धर्म" पुस्तक लिखते समय बुद्धि देवी को न जाने किस लोकान्तर को बिदा कर दिया था। आप लिखते हैं कि "वेद में तो कहीं इन (मनु याज्ञवल्क्यादि) स्मृतियों का नाम भी नहीं है" हम पूछते हैं कि जब तक पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ तब तक पिता के शरीर में भिन्न रूप से पुत्र नहीं दीखता

इस लिये पुत्र के उत्पन्न होने पर यह कहदोगे वा मान लोगे कि वह पुत्र अपने पिता से पैदा ही नहीं हुआ॥ यदि ऐसा कहोगे तो अपने शरीर के लिये भी गोस्वामी जी को वैसा ही मानने पड़ेगा॥ और यदि उसी का पुत्र मानने पड़ा तो पिता के शरीर में पुत्र के न दीख पड़ने का तर्क व्यर्थ होगया॥ क्यों कि उत्पन्न होने से पहिले पिता के शरीर में पुत्र का सूक्ष्म रूप से विद्यमान होना इसी से सिद्ध है कि वह उसी पिता का पुत्र है॥ इसी के अनुसार स्मृति जब वेद से निकलीं यह सिद्ध है तब उन के निकलने से पहिले वा पीछे वेद में उन का सूक्ष्म रूप से होना सिद्ध है तब वेद में स्मृति वा स्मार्त शब्दों के न दीखने पर भी तर्क करना नहीं बन सकता॥ हां यदि यह लिखा जाता कि इन युक्ति प्रमाणों से मनु आदि स्मृति वेदानुकूल नहीं ऐसो विचार गोस्वामी जी लिखते तो पूर्वपक्ष उन का ठीक होता तब उत्तर भी ठीक २ दिया जाता—

म० गोस्वामी—ताण्ड्य महा ब्रा० अ० २३ खं १६ में लिखा है कि „ यद्वै किंचन मनुरवदत्तद्भेषजम् ” इस में आये मनु शब्द का अर्थ स्वायम्भुव मनु करके मनुस्मृति का प्रमाण वेद में मान लिया। हमारे प्यारे स्मार्त भाई प्रकरण कब देखते हैं ?। उन को तो धनिक वणिकों को वेद में मनुस्मृति का प्रमाण दिखाना है झट दिखा दिया। यदि „ तुष्यतुदुर्जन न्यायेन ” यह ठीक भी मान लिया जाय तो आप की पञ्चदेवोपासना ’ रुद्राक्ष ’ भस्म ’ और तिर्यक् पुण्ड्र मनुस्मृति में कहां हैं ?।

समीक्षक—ताण्ड्य महा ब्राह्मण में आये मनु शब्द का अर्थ गोस्वामी जी! आप कौन मनु का करते हैं और वह किस युक्ति प्रमाण के अनुसार ठीक सिद्ध है ?। तथा वहां वास्तविक प्रकरण आप को दिखलाना था सो कुछ भी न दिखाकर मनमाना लिख देने से कुछ भी फल नहीं है। धनिक वणिकों को बहकाने का आक्षेप स्मार्त लोगों पर गोस्वामी जी ने केवल द्वेष बुद्धि से किया है। हमने जहां तक देखा जाना है कोई भी ईश्यादि साधारण पुरुष मनुस्मृति के वेद मूलक होने ठहराने से अपनी कुछ भी इष्ट सिद्धि नहीं मानता „ तुष्यतु दुर्जन न्यायेन ” यह वाक्य संस्कृत व्याकरण के नियम से अशुद्ध है। क्या गोस्वामी जी संस्कृत व्याकरण ज्ञान से शून्य ही हैं ?। क्यों कि दुर्जनशब्द विभक्ति शून्य होने से अपद हो गया। और भाष्यकार पतञ्जलि ने

कहा है कि (अपदं न प्रयुञ्जीत) इस से अशुद्ध है । कदाचित् गोस्वामी जी को व्याकरण में प्रवेश भी हो न स्मार्त्तों के साथ द्वेष बढ़ने से घबड़ाकर अशुद्ध लिख गये हों ॥ वास्तव में शुद्ध वाक्य (तुष्यतुदुर्जनः) इस न्याय से वा (तुष्यतु दुर्जन इति न्यायेन) ऐसा होगा ।

यदि यह भी मान लिया जाय कि (निरनुबन्धकग्रहणे सानुबन्धकानां ग्रहणं भवति) निरनुबन्धक के ग्रहण में उन सब सानुबन्धकों का ग्रहण हो जाता है कि जो अनुबन्धों के हटाने पर एक रूप हो जावें । इस न्याय के अनुसार ताण्ड्यमहाब्राह्मण में आये मनुशब्द के साथ कोई अनुबन्धमात्र विशेषण नहीं पढ़ा तब जिन २ मनुओं ने जो २ कुछ निबन्ध कहा है वह सभी भेषज रूप माना जायगा । जैसे मानवकल्प सूत्र मानव गृह्यसूत्र इत्यादि । इस प्रकार का अर्थ लेने पर भी स्वायम्भुवमनु की कही मनुस्मृति के लिये भी ताण्ड्यमहाब्राह्मण का प्रमाण इष्ट साधक अवश्य होगा । इस को गोस्वामी जी किसी युक्ति प्रमाण से नहीं हटा सकते । परन्तु वास्तविक बात तो यह है कि स्वायम्भुव मनु सब से पहिले होने से सब में प्रधान हैं । और प्रधान अप्रधान दोनों की प्राप्ति में प्रधान का ही ग्रहण होता है ।

प्रधानाप्रधानयोः प्रधाने कार्यसम्प्रत्ययः ॥

इस न्याय के अनुसार स्वायम्भुवमनु की मनुस्मृति के लिये ही ताण्ड्य ब्राह्मण का कथन माना जायगा ॥

अब रहा यह कि सब स्मृतियों में मनुस्मृति जो शिरोमणि के तुल्य सब से उत्तम कक्षा में प्रामाणिक मानी जाती है उस का कारण केवल यही नहीं कि ताण्ड्य महाब्राह्मण में मनु के कथन को औषधरूप कहा गया है । किन्तु जैसे पिता अपने पुत्र की प्रशंसा करे इतने से पुत्र की प्रतिष्ठा ऐसी अधिक नहीं होती जैसे कि पिता का आज्ञाकारी सर्वथा हितैषी पिता के अनुकूल चलने वाले पुत्र की प्रतिष्ठा संसार में अधिक २ होती है और वही कुलदीपक सुपुत्र कहाता है वैसे ही यहां भी वेद का सर्वोपरि आदर करने तथा सर्वथा वेदानुकूल सब के हित का उपदेशक होने से मनुस्मृति की विशेष कर प्रशंसा प्रतिष्ठा है । सो हम प्रतिज्ञा के साथ कहते है कि मनुस्मृति के सैकड़ों सहस्रों वा अधिकांश उपदेशवाक्य केत्यों वेद से अवश्य मिलेंगे इस

में कुछ भी सन्देह नहीं जो कोई चाहै मिलाकर देखलेवे।

अब रहा यह कि मनुस्मृति में पञ्चदेवोपासना रुद्राक्ष, भस्म, तिर्यक् पुण्ड्र इन का पता भी नहीं है।

इस का उत्तर सुनिये! पञ्चदेवोपासना हमारे वेदादिशास्त्रों में कई प्रकार से लिखी गयी है। परन्तु एक दो देवताओं की उपासना के लिये वेदादिशास्त्रों में उतने प्रमाण कदापि नहीं मिलेंगे कि जितने पञ्चदेवोपासना के प्रमाण सर्वतन्त्र सिद्धान्त से मिलेंगे। इस लिये श्रुति स्मृति को निर्भ्रान्त प्रमाण मानने वाले आस्तिक गृहस्थ ब्राह्मणादि को पांच देवों की ही उपासना सदा कर्त्तव्य है।

वैदिक रीति से पञ्चदेवोपासना १-आहवनीय। २ गार्हपत्य। ३-दक्षिणाग्नि। ४-औपासन वा गृह्य। ५-सभ्य। इन पांच अग्नियों की पूजा ही वेदरीति से पञ्चदेवोपासना नित्य के अग्निहोत्र में नियत की गयी है। इसी को चाहे यों कहो कि पांच अग्नियों के द्वारा पांच देवों की पूजा उपासना वेद रीति से की जाती थी। छान्दोग्योपनि० प्र० ४ खं० में (अथ हाग्नयः समूदिरे) चेतन देवता गार्हपत्यादि कहेहैं यही पञ्चदेवोपासना स्मार्त्त कर्मों में पञ्चमहायज्ञों के नाम रूप से भी कही गयी है।

स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन्होमैर्देवान्यथाविधि।

पितॄन्श्राद्धैश्चनॄनन्नैर्भूतानिबलिकर्मणा॥ मनु०३।८१॥

अर्थ-विधिपूर्वक वेदाध्ययन से ऋषियों की भोज्य वस्तु के होम से देवतों की श्राद्धों के द्वारा पितरों की अन्न दान के द्वारा मनुष्यों नाम अतिथियों की और बलिकर्म के द्वारा भूतों की पूजा गृहस्थ पुरुष नित्य २ अवश्य करे। ऋषि, देव, पितर, अतिथि और भूत इन पांच नाम रूपों से पञ्चदेवोपासना यहां कही गयी है।

और श्रुति तथा स्मृति नाम महाभारतादि में पञ्चदेवोपासना की एक रीति यह भी लिखी है कि-

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव।

अतिथिदेवो भव। इत्यादि तैत्तिरीयारण्यके--

पञ्चाग्नयोमनुष्येण परिचर्याः प्रयत्नतः।

पितामाताग्निरात्माचगुरुश्चभरतर्षभ ॥

अर्थः-(माता देवो यस्य समातृदेवः) देवता बुद्धि से माता पिता आचार्य और अतिथि की सेवा भक्ति श्रद्धा के साथ गृहस्थ को अवश्य करनी चाहिये। अर्थात् मातादि के शरीरों में मनुष्य बुद्धि रख के सेवा पूजा न करे किन्तु उन को देवता का विग्रह मानकर पूजे। इसी लिये मनुस्मृति अ० २ में कहा है कि—

आचार्योब्रह्मणोमूर्त्तिःपितामूर्त्तिः प्रजापतेः ।

गुरु साक्षात् ब्रह्म की मूर्त्ति तथा सृष्टिकर्त्ता प्रजापति की मूर्त्ति पिता को मान कर सेवा पूजा किया करे। यहां मातादि नाम रूपों से पांच देवों की पूजा उपासना दिखायी है। इन्हीं पांच देवताओं का पूजन तथा उपासना सूर्यादि पांच नाम रूपो से अनेक स्मृतियों में तथा इतिहास पुराणों में प्रतिमा द्वारा वर्णन की गयी है। इन सब प्रकारों से पांच ही देवों की उपासना सिद्ध होती है। यदि गोस्वामी जी पञ्चदेवोपासना का अर्थ केवल धातुओंकीप्रतिमा द्वारा ही समझते है तो उन की बुद्धि वास्तव में अधिक संकुचित तथा एकदेशी है। इस प्रकार मनुस्मृति में पञ्चदेवोपासना सिद्ध है। यदि कहें कि मनु में गणेशादि पांच देवताओं की पूजा प्रतिमा द्वारा पृथक् २ नहीं दिखाई गयी तब इस का उत्तर यह है कि-मनुस्मृति पुस्तक वास्तव में इतना ही नहीं है कि जितनी इस समय प्रसिद्ध है क्योंकि मनु का प्रमाण जिन २ अन्य ग्रन्थों में दिया गया है उन में मनुस्मृति के नाम से लिखे श्लोक अब इस मनु० पु० में नहीं मिलते। इस के लिये देखो मुम्बई की छपी सात टीका वाली मनुस्मृति। उस के अन्त में मनु के नामसे मिलनेवाले बहुत श्लोक ग्रन्थों से संग्रह किये गये हैं। अब वृद्ध मनु के नाम से प्रसिद्ध मनुस्मृति नहीं मिलती किन्तु लुप्त हो गयी उसी मनुस्मृति से किसी ने यह सक्षेप कर लिया है ऐसा प्रतीत होता है। इस को यदि गोस्वामी जी न मानें तो उन के लिये उत्तर यहहै कि इसी संक्षिप्त मनुस्मृति में भी जब स्पष्ट लिखा है कि——

पूर्वाह्णएवकुर्वीत देवतानांचपूजनम् ।

यहां देवतानां करके बहुत देवताओं का पूजन स्पष्ट सिद्ध है किन्तु एक दो का नहीं। सो अन्य ग्रन्थों के साथ सगति मिलाने के लिये बहुत देवता

वेही पांच गणेश जी आदि लिये जावेंगे। द्वितीय एक बात यहभी विचारणीय है कि शास्त्रीय सिद्धान्त का मर्म यदि गोस्वामी ने वास्तव में समझ लिया होता तो उनकी बुद्धि इतनी संकुचित न होती कि मनुयाज्ञवल्क्यादि थोड़े से ख़ास २ पुस्तकों को ही वे स्मृति मान बैठते। वास्तव में मन्त्र ब्राह्मणात्मक श्रुति नाम वेद से भिन्न सभी ग्रन्थ सामान्यतया स्मृति कहाते हैं और वे ग्रन्थ मूल तथा भाष्यादि भेद से सैकड़ों ही हैं छः दर्शन तथा इतिहास पुराणादि सभी स्मृतियों के अन्तर्गत हैं। वेद के आशय का स्मरण करके जो २ पुस्तक ऋषि मुनियों तथा आचार्यों ने बनाये उन सब का सार्थक नाम स्मृति हुआ है। इसी लिये ब्रह्मसूत्र शारीरक भाष्य–अ० १ पा० १ सू० ११ पर

स्मृतेश्च–यंयंवाऽपिस्मरन्भावं त्यजत्यन्तेकलेवरम्

स्मृतावपि–यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेववा ॥

तथा ब्रह्मसूत्र अ० १ पा० २ सू० ६ यह है कि——

स्मृतेश्च–ईश्वरःसर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुनतिष्ठति।

तथा शारीरक ब्रह्मसूत्र अ० १। पा० २ सू० १६ पर देखो——

स्मृतावपि–अग्निर्ज्योतिरहःशुक्लः षण्मासाउत्तरायणम् ॥

तथा ब्रह्मसू० अ० १ पा० ३ सू० २३। २४। में देखिये——

सूत्रम्–अपिचस्मर्यते ॥

भा०–नतद्भासयतेसूर्यो नशशांकोनपावकः।

स्मृतेश्च–अथसत्यवतःकायात्पाशबद्धंवशंगतम्।

अङ्गुष्ठमात्रंपुरुषं निश्चकर्षयमोबलात् ॥

तथा ब्रह्मसूत्रे अ० १। पा० ३ सू० २७–भाष्यम्——

तथास्मृतावपि–आत्मनोवैशरीराणिबहूनिभरतर्षभ।

कुर्याद्योगीबलंप्राप्य तैश्चसर्वैर्महींचरेत् ॥

तथा ब्रह्म सू० अ० १। पा० ३ सूत्र २८ में देखो भाष्य——

स्मृतिरपि–अनादिनिधनानित्या वागुत्सृष्टास्वयंभुवा।

तथा ब्रह्म सू० अ० १। पा० ३ सू० २९ पर देखो——

वेदव्यासःस्मरति–युगान्तेऽन्तर्हितान्वेदान्सेतिहासान्महर्षयः ।

इस ऊपर लिखे सब प्रमाणों में वेदान्त सूत्रकार व्यास जी और शारीरक भाष्यकार भगवान् श्री शंकराचार्य जी ने विशेष कर स्मृति के उदाहरणों में महाभारत इतिहास के अन्तर्गत भगवद्गीता के तथा भारत के अन्य प्रकरणों के उदाहरण दिये हैं इससे सिद्ध है कि श्रुति से भिन्न महाभारतादि इतिहास पुराणादि भी पहिले से ही स्मृति माने जाते थे ।

तथा ब्रह्म सू॰ अ॰ १ । पा॰ ३ सूत्र ३३ पर भाष्य देखो——

अपिचस्मरन्ति–स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः ।

यहां स्पष्ट ही योगदर्शन को स्मृति मान कर योग सूत्र उदाहरण दिया है।

तथा ब्रह्म सू॰ अ॰ २ । पा॰ १ । सू॰ १ देखो——

स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गइति॰चेन्न॰–

इस सूत्र में स्मृति शब्द से भाष्यकार ने सांख्यदर्शन लिया है । इत्यादि सहस्रों प्रमाण खोजने पर मिल सकते हैं जिन में श्रुति से भिन्न सभी शिष्टसम्मत ग्रन्थ स्मृति माने जायंगे । इस दशा में केवल मनु याज्ञवल्क्यादि को ही स्मृति समझना म॰ गोस्वामी की बड़ी भूल है । और जब श्रुति से भिन्न सभी शिष्ट ग्रन्थ स्मृति ठहरे तब मनुस्मृति में कोई बात न भी हो तो चिन्ता ही क्या किन्तु स्मार्त्त लोगों के पंच देवोपासनादि काम स्मृति कहाने वाले ग्रन्थों में अवश्य मिलेंगे इस से वे सब सप्रमाण ठहरे । अब इस में यह शंका हो सकती है कि महाभारतादि का नाम इतिहास पुराणादि स्मृति से पृथक् है और मनु आदि का नाम केवल स्मृति ही है । इस का संक्षेप उत्तर यह है कि जैसे (दशेमे पुरुषप्राणाः) इस श्रुति प्रमाण के अनुसार प्राण दश हैं । इस दश में से नौके अन्य २ विशेष अपानादि नाम भी हैं और प्राण सभी का नाम सामान्य है उन२ के अपानादि नाम विशेष होनेपर भी सबका सामान्य प्राण नाम होने में जैसे कुछ विरोध वा दोष नहीं आता वैसे ही सबका अन्वर्थ स्मृति नाम होने पर भी उन २ का इतिहास पुराणादि वा महाभारतादि विशेष नाम होनेमें कुछ विरोध वा दोष नहीं है । और दशमें एक का केवल प्राण नाम ही रहता है वैसे ही यहां मनुयाज्ञवल्क्यादि का

नाम केवल स्मृति वा धर्मशास्त्र ही कहाता है । ऐसा मानने से कुछ दोष नहीं । अब रहा भस्म का विचार सो पारस्कर गृह्यसू० देखो-

भस्मना ललाटे ग्रीवायां दक्षिणेंऽसे हृदि च त्र्यायुषमिति प्रतिमन्त्रम् ॥ पा० गृ० कां० २ कं० ५ ॥

भा०—ललाट मस्तक, कण्ठ दहिना कन्धा और हृदय इन में क्रम से (त्र्यायुषंजमदग्नेः०) इत्यादि चार मन्त्रों से भस्म लगावे । इस प्रकार जब मनु आदि स्मृतियों के भी मूल गृह्यसूत्रों में वेदमन्त्र के विनियोग सहित भस्मधारण का प्रमाण विद्यमान है तब भस्म का धारण करना वेदमूलक भी सिद्ध हो गया । क्योंकि जिस कर्म में जिस मन्त्र का विनियोग किया जाता है वह मन्त्र उस कर्म को प्रकाशित करता है अर्थात् उस मन्त्र का अर्थ उसी कर्म में घटता है परन्तु मधु० गोस्वामी का अभिमत गोपीचन्दनादि का ऊर्ध्वपुण्ड्र किसी भी गृह्यसूत्र में मिलना सम्भव नहीं है और न उसके लिये किसी वेदमन्त्र का विनियोग किसी आचार्य ने दिखाया है । तब उसका वेदमूलक ठहर सकना भी सम्भव नहीं है । द्वितीय एक सौ आठ उपनिषदों में एक "भस्मजाबालोपनिषद्„ भी जिस में केवल भस्म का ही विचार है । उस का विशेष विचार वहीं देखो पर थोड़ा लिखे भी देते हैं-

मानस्तोकइति सद्योजातमित्यादि पञ्चब्रह्ममन्त्रैर्भस्म संगृह्याऽग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म व्योमेति भस्म देवा भस्म ऋषयो भस्म सर्वंᳲहवाएतदिदं भस्मपूतं पावनं नमामि सद्यः समस्ताऽघशासकमिति शिरसाभिनम्य । पूते वामहस्ते वामदेवायेति निधाय त्र्यम्बकमिति संप्रोक्ष्य शुद्धं शुद्धेनेति सम्मृज्य संशोध्य तेनेवाऽऽपादशीर्षमुद्धूलनमाचरेत् ॥ इति भस्मजाबालोपनिषदि भस्मधारणविधिः—

भावार्थ सूर्योदय से पहिले प्रातःकाल उठ के ढांक के पत्तों पर गोबर थोड़ा २ धरके (त्र्यम्बकः) मन्त्र पढ़के जिस किसी प्रकार के तेज से सुखावे फिर अपनी शाखा और सूत्र के नियमानुसार अग्नि को स्थापित करके उस

अग्नि पर सुखाये हुए गोबर को रखके प्रज्वलित कर तिल चावल और घी का (सोमाय स्वाहा, मन्त्र से एक हजार आठ आहुति देवे। घी की आहुति देने के लिये ढांक के पत्तों की जुहू बनावे तिससे पाप नाम अनिष्ट को नहीं सुनना घी से होम करने का मन्त्र (त्र्यम्बकम्०)है अन्त में स्विष्टकृत हो पूर्णाहुति करो । तिल और चावल से आठों दिशा में बलि देके उस भस्म को गायत्री मन्त्र से जल सेचन करके सुवर्ण चांदी तांबा वा मट्टी के पात्र में धर के रुद्र देवता वाले मन्त्रों से फिर सेचन करके शुद्ध स्थान में धर देवे फिर ब्राह्मणों को भोजन करावे फिर (मानस्तो०) तथा (सद्योजातं०) इत्यादि पांच वेद मन्त्रों से भस्म का संग्रह करके (अग्निरिति०) इत्यादि मन्त्र पढ़ता हुआ शिर झुकाकर भस्म को प्रणाम करे फिर शुद्ध किये वाम हाथमें (वामदेवाय०) मन्त्र से रखके (त्र्यम्बकं०) मन्त्र से जल सेचन करके (शुद्धं शुद्धेन०) मन्त्रसे संमार्जन संशोधन कर के शिर से लेकर पगों तक सब शरीर में भस्म लगावे । इससे आगे शिर आदि भिन्न२ अंगों में भस्म लगाने का विशेष विधान और फल सभी भस्म जाबालोपनिषद् में लिखा है जिसको विस्तरभय से यहां नहीं लिखा । जब भस्मधारण का विधान उपनिषदों में ऐसा विस्तृत है तब अन्य प्रमाण की अपेक्षा ही क्या है ? । द्वितीय यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि आर्यसमाजियों को छोड़के बाकी सभी सनातनधर्म के अनुगामी सभी संप्रदायों वाले ब्राह्मण तथा उपनिषदों को निर्विकल्प वेद वा श्रुति मानते हैं । वैष्णव सम्प्रदाय के श्रीभाष्यादि के आचार्य भी उपनिषदों को श्रुति मान चुके हैं । तब क्या हमारे मित्र मधुसूदन गोस्वामी जी उपनिषदों को वेद वा श्रुति नहीं मानेंगे ? । वेद अपौरुषेय स्वतः प्रमाण है तदनुसार जब भस्म धारण का विशेष विधान वेद प्रमाण से सिद्ध हो गया तब मनु आदि किसी स्मृति में उसका विचार न भी मिले तो चिन्ता ही क्या है । जैसे सूर्य के प्रकाश में दीपकादि की अपेक्षा नहीं रहती वैसेही जिस विचार के लिये विस्तार पूर्वक वेद प्रमाण मिलता हो उसके लिये स्मृतियों में प्रमाण मिलने की कुछ अपेक्षा नहीं होनी चाहिये ।

अब रहा रुद्राक्ष का विचार सो अक्षमालिकोपनिषद् और रुद्राक्षजाबालोपनिषद् में इसका विस्तार पूर्वक वर्णन मिलेगा इससे रुद्राक्ष भी श्रुतिप्रमाण सिद्ध है । आशा है कि हमारे मित्र म० गोस्वामी हमारे ऊपर लिखे प्रमाण विचार को निष्पक्ष समझते हुए स्वीकार करेंगे ।

प्र० गोस्वामी भगवान् बादरायण व्यासने स्मार्त्त मत की निन्दा की है। ब्रह्मसू०१।२।२०।

नचस्मार्त्तमतद्धर्माभिलापात् ॥

अर्थ—स्मृति प्रतिपादित प्रकृति और शारीर जीव ये दोनों अन्तर्यामी नहीं हैं। क्योंकि अन्तर्यामी के धर्म इन दोनों में नहीं हैं। स्मृति शास्त्र का प्राचीन समय में यही लक्षण था कि जिन शास्त्रों में जड़ प्रकृति को जगत् कारण सिद्ध कियाहै वही स्मृति है, इस विचार को मानने वाले पुरुष भी स्मार्त्त क हातेथे। और जड़ प्रकृति को जगत् कारण मानना वेद विरुद्ध है। वेदसे ईश्वर ही जगत् कारण सिद्ध होताहै। इसीसे इसविचारको व्यासजीने पूर्वपक्ष मेंलियाहै

उत्तर—यह बात तो सत्य है कि ऊपर लिखे वेदान्त सूत्र में जड़ प्रकृति को जगत् का कारण कहने वाले स्मृति प्रतिपादित मत का खण्डन कियाहै। परन्तु यह नियम नहीं है कि जिस का कोई खण्डन करे वह मत वा सिद्धान्त सर्वांश में बुरा ही ठहर जावे। खण्डन करने वाला अपने सिद्धान्त से विरुद्धांश का खण्डन किया करता है। विचारदृष्टि से देखा तो सभी दर्शनों में प्रतितन्त्र सिद्धान्त कुछ अवश्य है और उस का खण्डन भी अवश्य किसी ने किया है। इसप्रकार जितना वाणी का विषय है वह सभी खण्डन भी किया जा सकता वा किया गया है वैष्णव सम्प्रदायों का खंडन भी अनेकों ने किया है। जैसा कि सर्वदर्शन संग्रह पुस्तक में माधवाचार्य रामानुज दर्शन को पूर्वपक्ष में रख कर पूर्णप्रज्ञ दर्शन में उसका खंडन दिखाया है। क्या इतने से गोस्वामी जी सब की अपेक्षा सर्वांश में रामानुजीय मत को निन्दित मान लेंगे? यदि उन का ऐसा विचार है तो बड़ी वे समझी है। हम तो अनेक अंशों में सभी सम्प्रदायों को उन २ सम्प्रदायस्थ मनुष्यों के लिये विशेष उपकारी कल्याण मार्ग की ओर ले चलने वाले समझते हैं। तदनुसार वैष्णव सम्प्रदायों ईश्वर भक्ति का मार्ग जो आस्तिकता का मूल है और सर्वसाधारण के लिये सुगम मार्ग है अन्य सम्प्रदायों की अपेक्षा वैष्णव सम्प्रदायों में भक्ति अंग प्रबल है। सभी सम्प्रदायों में पक्षपात शून्य शुद्धान्तःकरण काम क्रोध लोभ से बचने वाला मनुष्य दुःख सागर के पार हो सकता है। ऊपर लिखे वेदान्त सूत्र में प्रकृति को जगत् का कारण कहने वाले सांख्य दर्शनोक्त स्मार्त्तमत लिया। सर्व दर्शन संग्रह पुस्तक में रामानुज दर्शन से दश दर्शन आगे में है

लिस के बाद सांख्यदर्शन है। चाहे यों कहो कि रामानुज दर्शन से ऊंचा कक्षा पद के सांख्य दर्शन है। सांख्य के बाद पातञ्जल दर्शन और उस के बाद सब की अन्तिम सीमा पर शांकर दर्शन है जिस से आगे फिर कोई दर्शन (ज्ञान) नहीं है।

शांकरान्नापरंकिंचित्साकाष्ठासापरागतिः ॥

शांकरज्ञान से परे और कोई ज्ञान मार्ग नहीं इस से परमगति मोक्षकी अन्तिम सीमा पर लेजाने वाला वेदान्त ज्ञान ही जानो।

जब वैष्णवादि सम्प्रदायों से इतना ऊंचा सांख्य दर्शन है जिस के मर्मको गो. स्वामी जी अधिक जन्म के भी नहीं पा सकते उस की निन्दा गोस्वामी कैसे कर सकते हैं ?। शांकर वेदान्त दर्शन की अपेक्षा सांख्यमत का छोटापन सिद्ध हो जाने पर भी रामानुजादि दर्शनों की अपेक्षा सांख्यदर्शन बहुत ऊपर प्रतिष्ठित मान्य कक्षा में अवश्य रहेगा। भगवान् रामचन्द्र जी के श्वशुर राजा जनक सांख्य के पूर्णज्ञानी थे यह भारत इतिहास से सिद्ध है। राजा जनक के गुरु पञ्चशिखाचार्य थे। इसी लिये कहा गया है कि--

नास्तिसांख्यसमंज्ञानं नचयोगसमंबलम् ॥

सांख्यज्ञान के तुल्य कोई ज्ञान नहीं है। "जिन शास्त्रों में जड़ प्रकृति को जगत्कारण सिद्ध किया है वही स्मृति है। प्राचीन काल में यही स्मृति का लक्षण था।" गो स्वामी का यह लिखना सर्वथा मिथ्या है। क्योंकि स्मृति का ऐसा लक्षण किसी भी प्राचीन ग्रन्थ में नहीं मिलेगा। यह उन का घड़ा मनमाना लेख प्रमाण शून्य होने से किसी बुद्धिमान् को ग्राह्य नहीं है। हम स्मृति वचनों के उदाहरणों में भगवद् गीता के अनेक वचन ऊपर लिख चुके हैं जिन से भगवद्गीता का स्मृति पदवाच्य होना सम्यक् सिद्ध है। अब क्या मधु० गो स्वामी भगवद् गीता को भी स्मार्त्तों के साथ द्वेष करनेसे छोड़ देंगे ! वा स्मृति ठहर जाने से भगवद्गीता की भी निन्दा करेंगे। श्रीमद्भागवत भी सामान्यतया स्मृतियों में ठहर जायगा। सम्प्रति जितने मत वा दर्शन मिलते हैं वा हो सकते हैं वे सब एक प्रकार की कक्षा वा दर्जे वा सीढ़ी हैं। जैसे मिडिल क्लास के योग्य विद्यार्थी मिडिल में भर्ती होने चाहिये। मिडिल दर्जा किन्हीं से ऊंचा और किन्हीं से बहुत नीचा है। वैसे ही भिन्न २ कक्षा के योग्य प्राणियों अर्थात् मनुष्यों के लिये अनेक सम्प्रदाय वा

मत हैं। इन सबमें विरोध वास्तव में नहीं है परन्तु मनुष्यों ने विरोध खड़ा कर लिया है यह मनुष्यों का ही दोष है।

म० गोस्वा०—श्रीवैष्णव धर्म हिंसा मद्य मांस स्त्रीसंग शून्य है क्योंकि निवृत्ति प्रधान है। जो लोग निवृत्ति मार्ग में प्रेम न रखके हिंसा मद्य मांस और स्त्रीसंग की रुचिवाले हैं उन्होंने वैष्णव धर्मके मुकाबिले पर तंत्र नाम धरके पुस्तकें रचीं और मद्य मांस तथा हिंसादि देशभर में फैला दिये। शाक्त धर्म वैष्णव धर्मका और तंत्र वेदका मुकाबिला करने को ही प्रकट किये गये थे। जब वादही स्मार्त्तमतहै। शाक्त नामसे समाज को भय होता देखके शाक्त-नाम बदल कर शाक्तोंने अपना स्मार्त्त नाम धरलिया।

उत्तर—श्रीवैष्णव धर्म बुरा है यह हमारा भी पक्ष कदापि नहीं है किन्तु इसमें भक्तियोग का अङ्ग बहुत अच्छा लिया गया है जो कलिकाल के अल्प-शक्ति गृहस्थों का बड़ा उपकारी है। परन्तु वैष्णव धर्म निवृत्ति प्रधान नहीं है किन्तु प्रवृत्ति प्रधान है। सो (प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्) प्रत्यक्ष में अन्य प्रमाण की अपेक्षा ही क्या है। अबभी वैष्णव धर्मों के गुरुलोग बड़ी २ सम्पत्ति वाले हैं किन्तु विरक्त बहुत कम मिलेंगे। हम यह अवश्य कह सकते हैं कि हिंसा मद्य मांस से किसी दर्जेतक बचने वाले अनेक सम्प्रदाय हैं उनमें वैष्णव तथा जैन मुख्य हैं। विष्णु भगवान् का यजन पूजन भक्ति उपासना वैष्णवों में जैनों से अधिक और अच्छी है। परन्तु मद्य मांसादि से सर्वथा बचजाना कठिन है॥

अन्यों के साथ द्वेष होना हिंसा को मूलहै। यह द्वेष अनेक वैष्णवों मेंभी दीखता है। भांग अफीम तथा स्वादिष्ठ और पुष्ट भोजन की चाहना वा प्राप्ति करना यह मद्य मांस का एक अंग है। पर तो भी प्रत्यक्ष मद्य मांस नाम से प्रसिद्ध तथा बकरादि के मारने रूप साक्षात् हिंसा से अन्यों की अपेक्षा श्रीवैष्णव और जैन दोनों ही अधिक बचते हैं यह बात उन में अवश्य अच्छी है। परन्तु स्त्रीसंग से शून्य वैष्णव कदापि नहीं हैं किन्तु अनेक सम्प्रदायों की अपेक्षा व्यभिचार का दोष वैष्णवों पर अधिक ही ठहरेगा। आगे „ जो लोग निवृत्ति मार्ग में प्रेम न रखके हिंसा मद्य मांस और स्त्री सग की रुचि वाले हैं उन्हों ने वैष्णव धर्म के मुकाबिले पर तंत्र नाम धर के पुस्तकें रचीं और मद्य मांस तथा हिंसादि देश भर में फैला दिये ” गोस्वामी

का यह कथन किसी एक अंश में सत्य होने पर भी अधिकांश में वेदादि शास्त्र के सिद्धान्त से विरुद्ध है। सो सत्य तो यह है कि मद्य मांस हिंसा से जितना जो बच सके वह न बचने वालों से अच्छा है। इसी लिये शाक्त सम्प्रदायों की अपेक्षा वैष्णव सम्प्रदाय अच्छा है क्योंकि शाक्त मत में तंत्र ग्रन्थों के अनुसार मद्य मांस का कुछ विनियोग है और वैष्णव सम्प्रदाय में मद्य मांसादि का निषेध है। परन्तु युक्ति और प्रमाणों से अब तक यह सिद्ध हो-चुका है कि सब अधर्म वा अनर्थों का मूल हिंसा रूप अधर्म है और सब धर्मांशों का मूल कारण अहिंसा धर्म है। द्वेष, कोप, क्रोध, ईर्षा, मत्सरता, निन्दा, द्रोह और न सहना इत्यादि हिंसा रूप वृक्ष की जड़ें हैं। मारना पीटना वा कतल करदेना गला काट देना आदि हिंसा वृक्ष की पिण्डी तथा स्कन्ध हैं। और मांस का काटना बेचना पकाना तथा खाना आदि हिंसा वृक्ष के डाली पत्ते हैं। इस के अनुसार द्वेष वा द्रोह बुद्धि जिन लोगों में है वे कदापि हिंसा रूप अधर्म से बचे नहीं माने जावेंगे क्योंकि योगभाष्य में व्यास जी ने अतिद्रोह का ही नाम हिंसा रक्खा है। सो यह द्वेष वा द्रोह भी वैष्णव संप्रदाय में भी कम नहीं हैं। यद्यपि वैष्णव सम्प्रदाय में भी ऐसे समदृष्टि लोग अवश्य मिलेंगे जो किसी सम्प्रदाय से वैर विरोध न रखते हों शिव, भगवती गणेश जी आदि नाम रूपों में भी विष्णु भगवान् को ही मानते हों। तथापि अन्य सम्प्रदायों से घृणा तथा द्वेष दृष्टि रखने वाले अन्य देवताओं को देवता ही न समझने वाले मनुष्य वैष्णवसम्प्रदाय में अधिकांश मिलेंगे। परन्तु शैव शाक्तादि सम्प्रदायों में अपने २ देवता का इष्ट रखते हुए भी अधिकांश लोग ऐसे ही मिलेगे जो विष्णु भगवान् के मन्दिर में भी विष्णु भगवान् की स्तुति प्रार्थना अच्छी श्रद्धा भक्ति से करेंगे तथा प्रत्यक्ष करते भी दीखते हैं। इसी बात को चाहें यों कहो कि प्रसिद्ध वैष्णवों को छोड़ कर बाकी सभी सनातन धर्मी पञ्चदेवोपासक ही हैं। वे लोग किसी सम्प्रदाय से वा वैष्णव सम्प्रदाय से भी द्वेष इस लिये नहीं रखते कि उनके सिद्धा से विष्णु भगवान् के रामकृष्णादि सभी अवतार विग्रह भी पूजनीय उपासनीय ही हैं। परन्तु वैष्णव सम्प्रदाय में शिव जी गणेश जी आदि उपास्यदेव नहीं हैं। सत्य बात तो यह है कि वैष्णवादि सम्प्रदायों की अपेक्षा पञ्चदेवोपासना के मानने वाले सनातन धर्मी लोगों का मत वा सिद्धान्त वि-

शेषतया वेदानुकूल है। वा यों कहो कि पांच देवों की उपासना ही वेदानुकूल होने से मुख्य सनातनधर्म है। सर्ववेदभाष्यकार श्रीसायणाचार्य ने ऋग्वेद भाष्य की भूमिका में लिखा है कि—

यद्यपीन्द्रादयस्तत्रतत्र हूयन्ते तथापि तस्यैवेन्द्रादिरूपेणावस्थानादविरोधः।

यद्यपि वेद में कहे इन्द्रादि अनेक देवता उन २ यज्ञादि कर्मों में आवाहन किये जाते हैं तथापि एकही अखण्ड ब्रह्म अनेक इन्द्रादिरूप में अवस्थित होने से एकेश्वरवाद में कुछ विरोध नहीं है। प्रयोजन यह है कि पांचदेवों के उपासक सनातन धर्मियों का असली सिद्धान्त यही है कि—

एक एवहि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः।
एकधा वहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्॥

सनातन सिद्ध एक ही आत्मा ईश्वर भगवान् भिन्न २ जल में चन्द्रमा की छाया के समान देव मनुष्य तिर्यगादि में प्रकाश कर रहा है। अर्थात् ठीक२ सनातन धर्मी मनुष्य वेही हैं जो एक ही परमेश्वर को अनेक देवता रूप व्यक्तियों में पूज्य वा उपास्य मानते हैं। इस लिखने से हमारा प्रयोजन यह है कि शैव वैष्णव शाक्तादि एक २ देशी सम्प्रदाय हैं। वेद के किसी मुख्यांश को लेकर सब भिन्न २ मार्ग चल पड़े हैं परन्तु उन २ सम्प्रदायों का ठीक तत्त्व समझने वाले शुद्धान्तःकरण रूप अन्त में एक ही मोक्ष पद को प्राप्त होते हैं। सम्प्रदाय रूप सब मार्ग एक ही स्थान को गये हैं। कि जैसे भिन्न २ मार्गों से जाती हुई भी सब नदियां अन्त में एक ही समुद्र में मिलजाती हैं। परन्तु तत्त्वदर्शी मनुष्य सदा ही कम होते हैं इसी कारण सम्प्रदायों में विवाद खड़ा होता है। स्मार्त्त कहाने वाले पञ्चदेवोपासक सनातन धर्मी वेद के सर्व देशी सिद्धान्त को मानने वाले हैं। किन्तु "शाक्तों ने अपना नाम स्मार्त्त रख लिया है इस से स्मार्त्त लोग सब शाक्त हैं" यह जो स्वामी का लेख मिथ्या है। क्योंकि इस में कोई भी प्रमाण नहीं है। वैष्णव धर्म के मुकाबिले पर तन्त्र पुस्तक बने यह भी प्रमाण शून्य बात है। वास्तव में तो बात यह है कि मद्य मांस हिंसादि अनर्थ समयानुसार राग रूप विषय भोगो त्कण्ठा से बीच २ बढ़ा करते हैं। उन को किसी नियम में बांधकर रोकने के

अभिप्राय से ही वेदादि तथा तन्त्र शास्त्र बनाये गये हैं। गोस्वामी जी कहते हैं कि "शाक्त धर्म वैष्णव धर्म का मुकाबिला करने को ही प्रकट किया गया था" हम कहते हैं कि शाक्त धर्म का मुकाबिला करने को वैष्णव सम्प्रदाय प्रकट किये गये हैं ऐसा क्यों न मान लिया जाय ?। क्योंकि गोस्वामी के कथन में तो कोई युक्ति प्रमाण नहीं पर हम युक्ति प्रमाण देते हैं। यथा-वैष्णव सम्प्रदायों के आचार्य रामानुज वल्लभाचार्य आदि किसी नियत समय एक दो हजार वर्ष के भीतर ही हुए हैं उन्हीं के समय से रामानुजादि सम्प्रदाय चले उन आचार्यों से पहिले रामानुजादि सम्प्रदायों का होना सिद्ध कदापि नहीं होगा। इससे सिद्ध हुआ कि ये सम्प्रदाय सनातन से नहीं हैं। परन्तु शाक्त सम्प्रदाय का चलाने वाला कोई खास आचार्य आधुनिक नहीं हुआ है। इस लिये यह शक्तिकी उपासना का सम्प्रदाय सनातन से है। क्योंकि ऋग्वेद के वागम्भृणी सूक्त में शक्तिकी महिमा बहुत कही गयी है-

यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥

अर्थ-शक्ति कहती है कि जिसको मैं चाहती उसी को बड़ा बनाती हूं। जिसको मैं चाहती उसको ब्रह्मा उसको मन्त्रद्रष्टा ऋषि और उसी को अच्छा बुद्धिमान् बनाती हूं। इससे शक्ति की अपार महिमा वेद से भी सिद्ध है। गायत्री सावित्री सरस्वती ब्रह्माणी वैष्णवी भवानी रुद्राणी मेधा तुष्टि पुष्टि धृति शान्ति क्षमा आदिरूप शक्तियों की उपासना से गोस्वामी भी नहीं बच सकते। अर्थात् गोस्वामी को भी अनेक शक्तियां अवश्य माननी ही पड़ेंगी। क्योंकि शक्ति शक्तिमान् का नित्य संबन्ध है। शक्ति के बिना शक्तिमान् कुछभी नहीं ठहरता इस कारण शक्तिही मुख्य है। शक्तिको मुख्य उपास्य मानने वाला शाक्त सम्प्रदाय है। स्त्री रूप शक्तिका सबसे अधिक आदर सत्कार आज कल यूरोपियन लोगों में है। यह भी एक प्रकार की शक्ति की उपासना है। इसलिये यूरोपियन लोग भी शाक्त कहे जा सकते हैं। यह बात वास्तव में कभी कहीं न थी न है कि शक्ति के उपासक लोग विषयी व्यभिचारी मद्य मांस के सेवन करने वालेभी अवश्य होते ही हों। प्रत्यक्ष देखलो कि अंगरेज लोगों में विषयी व्यभिचारी अन्यों की अपेक्षा कम हैं। अब मद्य मांस कोभी छोड़ने के उद्योग में हैं। स्त्री रूप शक्तिका अधिक आदर सत्कार होने से वे

महात्मा होती हैं। सर्वत्र ही जिसका आदर अधिक होता है वैसा २ ही उसका दिल बढ़ता है। इसी कारण उन स्त्रियों से ऊंचे२ विचार वाले सन्तान उत्पन्न होते हैं जो बड़े २ राज्य आदि कामों का भार ले सकते हैं। इसी कारण अंगरेजों की उन्नति है। सो हमारे मानव धर्मशास्त्र में भी कहा है कि मनु० अ० ३ श्लोक–५५-५९–

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा ।
पूज्याभूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥ १ ॥
यत्रनार्यस्तुपूज्यन्ते रमन्तेतत्रदेवताः ।
यत्रैतास्तुनपूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाःक्रियाः ॥ २ ॥
शोचन्तिजामयोयत्र विनश्यत्याशुतत्कुलम्
नशोचन्तितुयत्रैता वर्द्धतेतद्धिसर्वदा ॥ ३ ॥
तस्मादेताःसदापूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ।
भूतिकामैनरैर्नित्यं । सत्कारेषूत्सवेषुच ॥ ४ ॥

अर्थ–अपना बहुत कल्याण चाहने वाले पिता भाई पति और देवरादि पुरुष अपनी पुत्री आदि स्त्रियों का वस्त्राभूषण आदि से आदर सत्कार करें जिन घरों में स्त्रियों का आदर सत्कार अच्छा ठीक २ होता है वहां देवता लोग आते रमण करते हैं और जहां स्त्रियों का आदर नहीं होता वहां जप पाठ पूजनादि कर्म भी व्यर्थ से ही जानो। जिन कुलों में दुःख पाती हुई स्त्रियां शोक करती हैं वे शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। और जहां आदर होने से स्त्रियां शोक नहीं करतीं वे कुल धन धान्य सन्तान बुद्धि विद्या राज्यादि से सदा बढ़ते हैं। इस लिये ऐश्वर्य सम्पत्ति आदि द्वारा, सदा अपना भला चाहने वाले मनुष्य सत्कार और उत्सवों के अवसरों पर त्यौहार आदि के समय अच्छे २ आभूषण बहुमूल्य वस्त्र और उत्तम २ भोजनों द्वारा इन स्त्रियों का सदा पूजन करें। पाठक महाशय आप लोग ध्यान दोगे तो ऊपर लिखा मनु जी का कथन ठीक सत्य जान पड़ेगा। भारत वर्ष की अवनति का मूल कारण हमारी राय में स्त्रियों का अनादर ही है क्योंकि सब की उत्पत्ति की जड़ स्त्री है उस की तुच्छता हो जाने से सन्तान भी तुच्छही

पैदा होंगे। स्त्री का आदर सत्कार करना युक्ति प्रमाण दोनों से प्राप्त है और यह भी शाक्त है। प्रयोजन यह कि शाक्त शब्द का अर्थ वास्तव में पूर्व समय से निन्दित नहीं था किन्तु ऊपर लिखे अनुसार उत्तम २ गूढ़ अभिप्राय शाक्त शब्द से निकाले और माने जाते थे। तथा तन्त्र शास्त्र भी वेद से विरुद्ध नहीं किन्तु वास्तव में वेदानुकूल ही है। शास्त्रों के गूढ़ मर्म को समझने वाले विद्वान् सम्प्रति बहुत कम हैं। इसी कारण तंत्रादि वेद विरुद्ध दीखते हैं। हिंसा मद्य मांस व्यभिचारादि फैलानेके लिये तंत्रादि कोई भी शास्त्र नहीं बनाया गया। पाठक महाशय यहां तंत्र शास्त्रकी वेदानुकूलसंगति लगाने का अवसर नहीं है। हां यह अवश्य सत्य है अन्यमतों के तुल्य कि काम क्रोध लोभ मोह ग्रस्त मनुष्य भी शक्ति के उपासकों में हो गये तथा विद्यमान हैं। उन लोगों ने अपने काम क्रोध लोभादि के वश में आकर हिंसा मद्य मांस व्यभिचारादि जगत् में फैलाये हैं। स्मार्त्त वा शाक्तमत जड़ वाद का मानने वाला नहीं है क्यो कि—मनु० अ० १२। ९१।

सर्वभूतेषुचात्मानं सर्वभूतानिचात्मनि।
समम्पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति॥

अर्थ—सब भूतों के अन्तर्गत एक आत्मतत्त्व को और सब चराचर को आत्मा में देखता हुआ पुरुष मोक्ष का भागी होता है। यहां मनु जी ने सर्वात्मत्वदिखाया है। तथा इसी अ० १२ में ११९।

आत्मैवदेवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम्।

एक आत्मा ही सब देवताओं के नाम रूपों में है और सूत में वस्त्रों के समान एक आत्मा में ही सब देव तिर्यक् मनुष्यादि अवस्थित हैं। इस विचार को शारीरक भाष्य के अ० २ पा० १। सू० १ पर भी मनु जी का प्रमाण आत्मवाद पर लिया है। इस से सिद्ध हुआ कि स्मार्त्त मत चेतनात्मवाद प्रधान होने से सर्वथा वेदानुकूल है। गोस्वामी का लिखना मिथ्या है।

आगे गोस्वामी कहते हैं—शाक्तों को मद्यमांसादि का छोड़ना तो कठिन पड़ा पर स्मार्त्त रूप में आकर औदासीन्यता करने पड़ा—यथा मनु० अ० ५। ५६॥

नमांसभक्षणेदोषो नमद्येनचमैथुने।

प्रवृत्तिरेषाभूतानां निवृत्तिस्तुमहाफला ॥ १ ॥

अर्थ—न मांस भक्षण में दोष है न मद्यपान में न स्त्रीसहवास में क्योंकि यह भूतों की प्रवृत्ति ही है । इस में दोष क्या है ? । पर निवृत्ति का अच्छा फल है । शाक्त धर्म जब अपने आकार में था तब तो मद्य मांसादिकों का विधान ही करता था पर स्मार्त्त आकार में आकर भी तटस्थ हो गयो । मद्यपान करोतो मांस भक्षण करोतो कुछ दोष नहींहै पर नकरो तो अच्छाहै ।

उत्तर—क्यों गो स्वामी जी ! किस २ शाक्त को मद्य मांस का छोड़ना कब और कहां कठिन पड़ा था इस का पता और निशान आप बतला सकते हैं? । क्या इस अपने लेख को सत्य ठहराने के लिये कोई सुबूत है ? यदि है तो वह कब को रख छोड़ा है? । हम सम्प्रति प्रतिज्ञा करते हैं कि आज कल बिगड़े समय में भी परमेश्वरी शक्ति के ऐसे सच्चे उपासक हम दिखा सकते हैं जिनने जन्म भर में कभी भी मद्य मांस का स्पर्श भी न किया हो । हमे बड़ा आश्चर्य होता है कि गो स्वामी जी को बनावटी प्रमाण शून्य मिथ्या वार्तें लिखने में लज्जा संकोच क्यों नहीं हुआ ? । कहीं गो स्वामी का यह कुल धर्म तो न हो ? । शाक्त मत स्मार्त्त रूप में भी कभी नहीं आया न इस के लिये कोई प्रमाण है । यदि शाक्त मत स्मार्त्त रूप में बदल गया होता तो अर्थ से सिद्ध हुआ कि शाक्त रूप में न होता । परन्तु शाक्त धर्म अब भी अपने स्वरूप में पूर्ववत् ही विद्यमान है । अर्थात् केवल परमेश्वरी शक्ति के उपासक सहस्रों लाखों मनुष्य विद्यमान हैं । विशेष कर बंगाल में शक्ति की उपासना है । बंगालियों में विद्या बुद्धि की उन्नति जगत् प्रसिद्ध है । और पांच देवों की उपासना वाला विशेष वेदानुकूल स्मार्त्त धर्म शाक्त से भिन्न विद्यमान है । (न मांस भक्षणे दोषो०) यह मनुका श्लोक मांस भक्षणादि में उदासीनता प्रतिपादक नहीं है किन्तु मनु० में विस्तार के साथ मांस भक्षणादि का निषेध बल पूर्वक कर दिया है—अ० ५ । ४६ । ५१ ॥

योबन्धनवधक्लेशान् प्राणिनांनचिकीर्षति ।
ससर्वस्यहितप्रेप्सुःसुखमत्यन्तमश्नुते ॥
अनुमन्ताविशसिता निहन्ताक्रयविक्रयी ।
संस्कर्त्ताचोपहर्त्ताच खादकश्चेतिघातकाः ॥

मांसभक्षयिताऽमुत्रयस्यमांसमिहाद्म्यहम् ।
एतन्मांसस्यमांसत्वंप्रवदन्तिमनीषिण: ॥

अर्थ—जो पुरुष प्राणियों को बांधना मारना तथा क्लेश देना नहीं चाहता वह सब का हित चाहने वाला होने से अत्यन्त सुख का भागी होताहै। मारने की सलाह देने वाला हड्डी मांस को अलग २ करने वाला मारने वाला खरीदने वाला बेंचने वाला मारे पश्वादि को उठालाने वाला पकाने वाला और खाने वाला ये आठ घातक नाम हत्यारे कहाते हैं। हत्या का पाप इन आठों को लगता है। जन्मान्तर में वह मुझ को खायगा कि जिस का मांस मैं यहां खाता हूं। तथ मनु अ० ११ । ९३ । ९४ । ९५ । ७ ॥

सुरावैमलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते ।
तस्माद् ब्राह्मणराजन्यौवैश्यश्चनसुरांपिबेत् ॥ १ ॥
गौडी पैष्टीचमाध्वी च विज्ञेयात्रिविधासुरा ।
यथैवेका तथासर्व न पातव्याद्विजोत्तमैः ॥ २ ॥
यक्षरक्षःपिशाचान्नं मद्यंमांसं सुरासवम् ।
तद्ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवानामश्नताहविः ॥ ३ ॥
यस्यकायगतं ब्रह्म मद्येनाप्लाव्यते सकृत् ।
तस्यव्यपैतिब्राह्मण्यं शूद्रत्वं च सगच्छति ॥४॥

अर्थ:—मद्य अन्नों का मल (विष्ठामूत्र) है। और अपवित्र मलिन पाप रूप मल कहाता है। इस लिये ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य द्विज लोग कदापि मद्य पान न करें। गुड़ आटा और महुआ से बनी तीन प्रकार की सुरा नाम मद्य कहाती है। जैसे एक निकृष्ट हैं वैसे ही सब हैं इस कारण द्विजों में उत्तम लोगों को कदापि मद्य नहीं पीनी चाहिये। मद्य मांस सुरा और आसव ये यक्ष राक्षस और पिशाचों का अन्न नाम भक्ष्य है सो देवताओं का हविष्यान्न खाने वाले ब्राह्मण को नहीं खाना चाहिये। जिस ब्राह्मण के हृदय में स्थित वेद एक बार भी मद्य पान से दूषित हो जाता है उस ब्राह्मण का ब्राह्मण पन नष्ट होकर उस में शूद्र पन आ जाता है। (शेष आगे)

और जिस अंश में विधित्व का सम्भव नहीं हो उस को सिद्धार्थ वा अनुवाद समझना चाहिये । तात्पर्य यह कि विधारात्मक वाक्य के किसी अंश में भी विधित्व का सम्भव न हो तब उस वाक्य को अनुवाद समझलेना चाहिये । यहां कई बातों का बोधक होने से “ पञ्च पञ्चनखाभक्ष्याः ,, यह उदाहरण रखते हैं । जैसे इस वाक्य में भक्ष्याः , इस पद में ' यत् , प्रत्यय विधि को बोधन करता है अतः इस के सम्बन्धी ' भक्ष् , धातु के भक्षण अर्थ पर ध्यान किया तो भक्षण में स्वयं क्षुधित पुरुष की इच्छा का सम्भव है, अतः अत्यन्त अप्राप्त न होने से यह अपूर्व विधि का विषय नहीं हो सक्ता । और यदि भक्षण के नियमत्व की कल्पना करें तो नियम का फल अनिच्छा की निवृत्ति है सो क्षुधित पुरुष की भक्षण में अनिच्छा ही नहीं होती उसकी निवृत्ति के लिये वचन व्यर्थ होजावेगा । और तृप्त की अनिच्छा को वचन निवृत्त नहीं कर सक्ता, अतः उभयथापि वचन भक्षण अंश में नियम नहीं हो सक्ता । भाव यह है कि भक्षण जहां तक कर सक्ता है उस में कमी की जासक्ती है, जैसे सेर भर भक्षण करने वाले को तीन पाव वा आधसेर वा उपवास तक करवाया जा सक्ता है परन्तु जो सेर भर अन्न खा सक्ता है उस को सवा सेर भोजन नहीं करा सक्ते, वा जो नहीं ही भोजन करसक्ता उस को यत्किञ्चित् भी भोजन की आज्ञा नहीं दे सक्ते, सर्व अवस्था में ' भोजन करे ही , यह आज्ञा निरर्थक रहेगी । कोई ऐसी आपत्ति उठावे कि अभोजन से प्राण त्याग की इच्छा करे उस की अनिच्छा की निवृत्ति भक्षण के नियम का फल होगा, इस का यह उत्तर है कि अशक्त के समान विक्षिप्त (हिताहित विवेक शून्य) भी विधि में अधिकारी नहीं है । इस से—

“ सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिनोदितम् ,,

' सायं काल और प्रातःकाल भोजन करे ही , यह नियम ही मानना चाहिये” इस मिताक्षराकार के मत पर भी ध्यान करलेना चाहिये, कि भोजन में अनिच्छा को वाक्य निवृत्त कर सक्ता है कि नहीं । यह आपने नहीं विचारा कि यह भार्यागमन के समान नहीं है । जब कि ऐसा है तो आप—

“ नान्तरा भोजनं कुर्य्यात् ,,

' बीच में भोजन नहीं करना ' इस वचन को “ यदि द्विजातिभिरशनं कार्य्यं तदा सायं प्रातरेव ” ' जो द्विजाति भोजन करें तो सायंकाल प्रातः-

काल ही करें „नतन्मध्ये रात्रौ दिवा वा„ नकि इन के बीचमें रात्रि वा दिन को इस परिसङ्ख्या के अनुवाद मानने में कोई विप्रतिपत्ति नहीं उठा सक्ते हैं। इस से यह सिद्ध हुआ कि कहीं भी भक्षण का नियम नहीं कल्पित हो सक्ता ' इस से " पञ्च पञ्चनखा भक्ष्याः " इस प्रकृत उदाहरण में मिताक्षराकार भक्षण के नियमत्व में जो ' शश आदि के अभक्षण में दोषापत्ति हो जावेगी इस से इस को नियम नहीं मानना यह बाधक दिखाते हैं यह भी अनावश्यक है ' क्योंकि ऐसे स्थलों में नियम की सम्भावना हो तो दोष प्रदर्शन से उस को हटाना चाहिये । और जो दूसरा भक्षण नियम के अभाव में कारण आपने दिखाया है ' कि-श्वा आदिके भक्षण में दोष का अभाव सिद्ध होगा अतः श्वा आदि के भक्षण में जो स्मृति दोष विधान करती हैं उन के साथ उस नियम का विरोध होगा। अतः नियम नहीं मानना चाहिये ' यह भी नियमत्व के अभाव का हेतु अतितराम् असङ्गत है ' क्योंकि „पञ्च पञ्चनखा भक्ष्या एव " ' पांच पञ्चनख भक्षण करने ही चाहिये ' यह नियम के स्वरूप की अभिव्यक्ति है ' इस में आप विचार लेवे कि यह वचन अवश्य पांच पञ्चनखों के भक्षण में पुरुष को आग्रह से प्रवृत्त करता है परन्तु और श्वादिकों का भक्षण करलेना चाहिये वा नहीं चाहिये यह इस वचन से कोई प्रति फलित वाक्य नहीं निकलता । क्योंकि यह वचन अनिच्छा की निवृत्ति से चरितार्थ हो सकता है ' यदि नियम से अन्यत्र प्रवृत्ति भी फलित आप मानते हैं तो इस ही रीति से „ ऋतौ भार्यामुपेयादेव " इस आप के अभिमत नियम में भी यह बाधक आसक्ता है' क्योंकि जब 'ऋतु काल में गमन करना ही ' इस वाक्य से अनृतु काल में भी गमन की विधि निकलती है तो अनृतुकाल में पर्वादि काल में जो- निषेध हैउन का विरोध होगा अतः नियम नहीं मान सक्ते । अतः नियम का प्रकृत में अनिच्छा की निवृति के अतिरिक्त अन्यस्थल में प्रवृति रूप प्रयोजन फलित मानना यह बड़ी भूल है । इस से प्रकृत वाक्य में भक्षण का नियम नहीं हो सक्ता । और यदि भक्षण की परिसङ्ख्या की सम्भावना करें तो यद्यपि यहां पर भक्षण की अनुज्ञा है तथापि इस भक्षण की अनुज्ञा द्वारा किसी भागान्तर से निवृत्ति बोधित नही होती जैसे „ समेयजेत " यहां पर समदेश में अनुज्ञा के द्वारा विषम देश से निवृत्ति फलित होने से परिसंख्या होती है । अतः भक्षण में जब तीनों प्रकार के विधित्व का सम्भव नहीं देखा तब पूर्वोक्त ' प्राप्ते भावार्थे वचन विशेषणपरं युक्तम् ' इस न्याय की सहायता से भक्षण

में अनुवाद बुद्धि करके उस के विशेषण " पञ्चनखाः " ' पांच नख वाले ' इस पर दृष्टि पात किया । इस में यह विशेष ध्यान की बात है कि—शुद्ध घट में अवधारण करने से ' घट एव ग्राह्यः ' ' घट ही ग्रहण करना चाहिये ' ऐसे वाक्य से घट से भिन्न पट आदि सकल पदार्थों का निषेध फलित होता है ' और जब ' नीलो घट एव ग्राह्यः ' नील घट ही ग्राह्य है ऐसा अवधारण करते हैं तो नील घट के अतिरिक्त पीतादि घट और पटादि सकल पदार्थों का निषेध सिद्ध होता है और जब ' नील एव घटो ग्राह्यः , नील ही घट ग्राह्य है ऐसा विशेषण में अवधारण करते हैं तो घटों के मध्य में नील घटों से अतिरिक्त पीत घट आदिकों की निवृत्ति होती है घट से अतिरिक्त पट आदि पदार्थों की नहीं । इस ही रीति से यहां पर भी ' पञ्चनखाः , इस के साथ पञ्च यह एक विशेषण और है, उस के सहित वा केवल पञ्चनख की अपूर्व विधि नहीं हो सक्ती, क्यों कि अन्य भक्ष्यों में जैसे पञ्चनख वा पांच पञ्चनखों में प्रवृत्ति सिद्ध है । और यदि शुद्ध पञ्चनख में ' पञ्चनखा एव , ऐसे नियम की कल्पना करें तो नहीं कर सक्ते क्यों कि उपस्थित ' पञ्च , इस विशेषण का त्याग नहीं कर सक्ते, अतः ' पञ्च पञ्च नखा एव , भक्ष्याः , पांच पञ्चनख ही भक्षण करने योग्य हैं, ऐसा नियम मानें तो अनिच्छा की निवृत्ति प्रतीत नहीं होती किन्तु पांच पञ्च नखों के अतिरिक्त जो श्वादि पञ्च नख अभक्ष्य और मृगादिक भक्ष्य सकल से इच्छा की निवृत्ति प्रतीत होती है, अतः, यह नियम का स्थान ही नहीं है यदि निर्दिष्ट रूप में परिसंख्या का लक्षण घटता है इस से परिसंख्या माने सो भी ठीक नहीं है क्यों कि भक्ष्य अज मृगादिकों से इच्छा की निवृत्ति प्रतीत होती है इस से उसके भक्ष्यत्व विधायक वाक्यों से विरोध होगा, अतः विशिष्ट नियम को त्याग करके ' नील एव घटः,यह जैसे पीत घट आदि से ही व्यावृत्ति करता है पट आदि पदार्थ से नहीं इस की तरह विशेषण जो ' पञ्च , यह पद है इस में अवधारण देते हैं, ' भक्ष्याः पञ्च नखाश्चेत्पञ्चैव शशादयः , भक्ष्य यदि पञ्चनख हैं तो पांच शश आदि ही भक्षण करने चाहिये, ऐसा करने से पञ्च नखों के मध्य में ही जो शश आदि हैं उन के भक्षण की अनुज्ञा द्वारा श्वा आदि पञ्चनखों की ही निवृत्ति होती है न कि अन्य भक्ष्य अज मृगादिकों से । अतः यह परिसंख्या अदुष्ट है, इस अंश में अपूर्व विधि और नियम का अभाव पूर्वोक्त रीति से जान लेना । इस रीति से "पञ्च पञ्चनखा

भक्ष्या; ” इस वाक्य में ‘ भक्ष्या ’, इस पद में विधित्व की असम्भावना देख कर ‘ पञ्चनखाः ’, इस विशेष्य मात्र पर विचार किया उस में भी विधित्व सम्भव न होने पर ‘ पञ्च पञ्चनखाः ’, इस विशेषण विशिष्ट पर विचार किया तो इस में भी विधित्व नहीं हो सक्ता अतः तृतीय पद जो केवल विशेषण है उस में दृष्टि की तो अपूर्व विधित्व और नियमत्व की सम्भावना नहीं है किन्तु परिसंख्या विधित्व का निर्णय हुआ इस ही रीति से सर्व वाक्यों में विधित्व का विचार करना ।

अब एक ऐसा उदाहरण दिखलाते हैं कि जिस में वाक्य के श्रवण करने से विधित्व का बोध होता है परन्तु विचार करने पर किसी अंश में विधित्व सिद्ध नहीं होता । वह उदाहरण यह है——

“ पर्ववर्ज्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रतिकाम्यया ”

‘ पर्ववर्जित ऋतु काल में स्त्री की प्रीति की इच्छा से स्त्री के समीप में जावे ’ यह वाक्य है इस वाक्य के ‘ व्रजेत् ’ इस पद में लिङ् प्रत्यय विधि का बोधक है । और विधि का विषय पर्व और ऋतु से भिन्न काल में स्त्री के समीप गमन है ’ इस में विधित्व चिन्तन की इच्छा से देखते हैं तो रति की कामना उस पुरुष को है ही अतः अपूर्व विधि इस को नहीं समझ सक्ते । और यदि नियम समझें तो नियम भी नहीं हो सक्तो क्योंकि नियम का फल अनिच्छा की निवृत्ति है सो वहां अनिच्छा है ही नहीं किन्तु रति की कामना ही वर्त्तमान है । जैसे क्षुधित के लिये ‘ भोजन करे ही ’ इस नियम की कुछ आवश्यकता नहीं है’ क्योंकि वह आप ही नियम से प्रवृत्त होता है । और जब इस को कामना हीं नहीं तब वह अवस्था वचन का विषय ही नहीं है । इस से मिताक्षराकार ने जो इस को नियम माना है वह युक्त नहीं है । और यदि इस को परिसंख्या विधि मानें तो वह भी ठीक नहीं क्योंकि अनुज्ञा तो अवश्य है परन्तु इस अनुज्ञा के द्वारा किसी भागान्तर से निवृत्ति नहीं प्रतीत होती । अर्थात् यहां पर तीन काल हैं एक ऋतु काल और दूसरा पर्व काल तीसरा इन दोनों से भिन्न काल ! यदि इस तृतीय काल में रति कामना से अनुज्ञा के द्वारा निवृत्ति हो सक्ती है तो शेष दो कालों में गमन की हो सक्ती है’ उन में पर्वकाल साक्षात् “ पर्ववर्जम् ” इस वाक्य से निषिद्ध है ही, और यदि ऋतुकाल में गमन का निषेध कल्पित करेंगे तो “ ऋतौभार्यामुपेयादेव ” इस नियम से विरोध पड़ेगा । अतः “ पर्व वर्ज

सूक्तेष्वेमां तद्धतो रतिकाम्यय: " यह वाक्य सिद्धार्थ कथन है। ऋतुकाल में भार्य्यागमन का नियम इस तृतीय काल के लिये 'हां ना' कुछ नहीं कर सक्ता यह पहले दिखा ही चुके हैं। इस ही के पर्य्याय गौतम के दो सूत्र मिताक्षराकार ने लिख के उन को नियम ही बतलाया है उस का भी निर्णय पूर्वोक्त है। इस रीति से बुद्धिमान् पुरुष विधित्व नियमत्व और परिसङ्ख्यात्व का विचार कर लेवें, क्योंकि—वेद और धर्मशास्त्र के जो विधिवाक्य होते हैं उन के शब्दों में कोई विधित्वादिकों का बोधक चिन्ह नहीं रहता और न उन के आदि वा अन्त में 'विधि' 'नियम' आदि शब्द होते किन्तु वह केवल विचार ही से जाने जाते हैं।

सीताराम शर्मा

स० ध० विद्यालय भिवानी

महाशय=मैंने ब्राह्मण सर्वस्व भाग ४ सं० १ में जो पांच प्रश्न आर्य समाजियों से किये थे उन के उत्तर "अनाथरक्षक" में मुझे पंडित वंशीधर शर्मा जी एम० ए० वकील प्रधान प्रतिनिधि सभा राजस्थान ने दिये थे उत्तर पाठकों के दृष्टिगोचर हुए होंगे प्रश्न पाठकों ने देख ही लिये हैं उन के उत्तरों का शीर्षक यह है।

यज्ञ में पशुओं की हिंसा का निषेध ॥

प्रथम इस की सिद्धि में उनने अथर्व वेद का यह मंत्र लिखा है—

मुग्धा देवा उतशुना यजन्तोतगोरङ्गैः पुरुधायजन्त ।
यइमंयज्ञंमनसाचिकेतप्रणोवोचस्तमिहेहब्रवः॥ अथर्वकां०७।१।५

महाशय ने जो कुछ अर्थ इस मंत्र का किया है पाठकों ने देखा होगा ज्ञात होता है कि सायणाचार्य का भाष्य सन्मुख रख लिया है (क्योंकि सब पर्याय शब्द उसी भाष्य में के हैं) फिर मनमाना उलटा पुलटा अर्थ कर दिया है (इन महाशय को चाहिये था कि वे प्रमाण अवश्य लिखते जो अर्थ उन ने किया किस आधार पर किया—सायणाचार्य या गोपथ ब्राह्मण के अनुसार) ॥

उन महाशय को चाहिये कि वे इस अध्याय में पांचों मन्त्रों को देखें और सायणभाष्य भी देखें (यदि उन के समीप कोई ऋषि प्रणीत या आचार्य प्रणीत कोई और भाष्य होवे उसे भी देखें) तो पूरा पता लग जावेगा

तस्य वपामुत्खिद्याहरंति तामध्वर्युः स्रुवेणाभिघारयन्नाह–स्तोकेभ्योऽनुब्रूहीति,, ॥ ऐतरेय ब्रा० पं० २ खं० ११॥ " तेषां वपायामेव हुतायां स्वर्गो लोक प्राख्यायते वपामेव हुत्वा नादृत्येतराणि कर्माण्यूर्द्ध्वाः स्वर्गं लोकमायन् ॥ ऐ० ब्रा० पं० २ खं० १२-१३ ॥

सहोवाचाजीगर्तः सौयवसिर्मर्त्यमपरं शतं दत्ताहमेनं विशशिष्यामि तस्मा अपरं शतं ददुः सोऽसिन्निःशान ऐयाय ॥ ऐ० ब्रा० पं० २ ख० १६ ॥ अथातः पशोर्विभक्तिस्तस्य विभागं वक्ष्यामः ॥ ऐ० ब्रा० पं० ७ खं० १ ॥

इन से यज्ञ में पशुवध सिद्ध है ॥ फिर भी देखिये निम्न लिखित मंत्र और उन का सायण भाष्य–

पशुमालभ्य पुरोडाशं निर्वपति ॥ कृ० य० सं० अष्ट० ६ प्र० ३ अनु १० ॥

अथो पशोरेव च्छिद्रमपिदधाति ॥ कृ० य० अ० ६ प्र० ३ अ० १०५ मेदसा स्रुचौ प्रोर्णोति अर्धर्चे वसा होमं जुहोति ॥ कृ० य० सं० अ० ६ प्र० ३ अनु० ११ ॥
इषेत्वेति वपा मुत्खिदति ॥ कृ० य० सं० पशुबन्ध अ० ६ प्र० ३ अ० ९ तस्य शिरः छित्वा मेधम् प्राक्षारयन् ॥ कृ० य० सं० अ० ६ प्र० ३ अ० १ ॥

इन से यज्ञ में पशुवध सिद्ध है ॥ अब देखिये आश्वलायनादि गृ० सूत्र और श्रौत सूत्र–

अथ पशुकल्प उत्तरतोऽग्नेः शामित्रस्यायतनं कृत्वा ॥ आश्व० गृ० सू० अ० १ खं० ११ ॥

आनडुहं चर्मास्तीर्य प्रागूग्रीवमुत्तरलोम॥ आश्व० गृ० सू० अ० १ । खं० १४ ॥

नामांसो मधुपर्को भवति ॥ आश्व० गृ० सू० अ०१खं० २४॥

वपायां श्रप्यमाणायां प्रेषितस्तोकेभ्योन्वाह॥ आ० श्रौ०सू० पू० व० अ० ३ खं० ४॥

इसी प्रकार आजगवादि प्रसंग कात्यायन श्रौत सूत्र में देखिये ये सब यज्ञ में पशुवध सिद्ध करते हैं॥ फिर भी देखिये—

भक्ष्यनियमेनाभक्ष्यप्रतिषेधो गम्यते पंच पञ्चनखा भक्ष्या इत्युक्ते गम्यत एतदतोऽन्येऽभक्ष्या इति अभक्ष्य प्रतिषेधेन भक्ष्यनियमः-अभक्ष्यो ग्राम्यकुक्कुटः अभक्ष्यो ग्राम्यशूकरः। इत्युक्ते गम्यते एतदारण्यको भक्ष्य इति-भक्ष्यं च नाम क्षुत्प्रतिबंधार्थमुपादीयते शक्यं चानेन श्वमांसादिभिरपि क्षुत्प्रतिहतुं-तत्र नियमः क्रियते इदं-भक्ष्य-मिदमभक्ष्यं-तथा बैल्वःखादिरो वा यूपः स्यादित्युच्यते। यूपश्च नाम पश्वनुबंधार्थमुपादीयते शक्यंचानेन यत् किंचिदेव काष्ठमुच्छ्रित्यानुच्छ्रित्य वा पशुरनुबंधाय तत्र नियमः क्रियते ॥

इस प्रकार मंत्र संहिता, ब्राह्मण ग्रन्थ गृह्य सूत्र और जैमिनि सूत्रादि से सिद्ध है कि यज्ञ में पशुवध है॥

तीसरी बात यह है कि महाशय ने कुछ मंत्र शुक्ल यजुर्वेद से लिखे हैं और उन से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि यज्ञ में पशुवध नहीं है परन्तु उन को स्मरण रखना चाहिए कि ये मंत्र सामान्य शास्त्र हैं यह बात सब ही जानते हैं कि गोमेधादि की रक्षा-करना चाहिए मैंने कब लिखा था कि उन्हें लाठी आदि से सदैव पीटना या मारना चाहिए प्रस्तुत विषय देखिये

वह 'यज्ञ' है यज्ञ में पशुबध है या न ? वे वकील हैं इस लिए मैं उन से प्रार्थना करता हूं कि वे एक शहादत न०१ सन् ८७२ विशेषतः दफ़ात ५। ५३ काम में लावें यह उन के प्रतिदिन का कर्त्तव्य है ॥ इस पर कनिंग हेम फील्ड भी देखें प्रश्न और उत्तर में संबन्ध रहना चाहिये ॥

नोट मैंने कई महाशयों से इन विषयों पर पत्र व्यवहार किया है वे भी पक्ष वा विपक्ष में कुछ लिखेंगे आशा है कि निर्णय हो जावेगा ॥

चौथी बात महाशय ने यह लिखी है कि "अब आप ने जो पूर्वमीमांसाका प्रमाण दिया है उस पर अवश्य विचार करना है" इत्यादि आप ने जो विचार किया उस विचार को देख कर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि आप ने जैमिनि सूत्रों पर कोई नया भाष्य बनाया है या बना रहे हैं शबर स्वामी कुमारिल भट्ट माधवाचार्य पार्थ सारथि मिश्र लौगाक्षि भास्करादि का नाम ही सुन कर आप अप्रसन्न होगये आप अवश्य सूचित करेंगे कि मीमांसा सूत्रों पर किस भाष्य के अनुसार आप अर्थ करते हैं। आप को अवश्य बतलाना चाहिये आप फिर जैमिनि सूत्र पंचमाध्याय प्रथम पाद और सूत्र "पशुगणो तस्य तस्यापवर्जयेत् पश्वेकत्वात्" (५--२--९) और सूत्र "पश्वङ्ग रशनास्यात्तदागमे विधानात्" ४ ४-२२) और सूत्र यूपाङ्गं वा तत्संस्कारात्"(४-४-२३) मिला कर देखें और उन के भाष्य जो मैंने लिखे उन्हें देखें तो स्पष्ट सिद्ध हो जावेगा कि "यज्ञ में पशुवध है" यदि कोई और भाष्य आप के समीप होवे तो आप उसका प्रमाण देवें प्रमाण अवश्य ही देना चाहिये और यूप (खूंटा) और रशना (रस्सी) की कथा पर फिर विचार करें यह आप की कथा भी विलक्षण ही है यूप और रशना यज्ञ विषय में कुछ और ही हैं भाष्यादि देखने से ज्ञात होंगे इन पर फिर विचार करें औ भाष्यादि देखें।

सब से विलक्षण बात महाशय ने यह लिखी है या लिखवाई है या उन के नाम से किसी अन्य महाशय ने लिखी "कि यथार्थ में ये लोग (शंकराचार्यादि) वेद के जानने वाले नही थे इत्यादि.. ....

इस के लिये इस अवसर पर केवल इतना उत्तर बस है कि स्वामी शंकराचार्य और कुमारिल भट्ट न होते तो वेद का नाम आज कौन जानता और जो लोग बिना वेदवेदाङ्ग के पढ़े समझे बूझे "वेद वेद,, रात दिन गाते

गांव नगर नगर मार्ग मार्ग रथ्या रथ्या चिल्लाते फिरते हैं कैसे चिल्लाते फिरते (बौद्ध मत क्यों चला और नाश हुआ) देखिये स्वामी दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ २८६ ……(द्वितीयावृत्ति)

शंकराचार्य का पक्ष वेदमत का स्थापन था इत्यादि…………

यह क्या सिद्ध करता है ?

देखिये माधवाचार्य कृत सर्वदर्शनसंग्रह–

" इतः पर सर्वदर्शनशिरोमणि भूतं शांकरदर्शनमन्यत्र लिखित-मित्युपेक्षितमिति " इसीसे जगद्गुरु कहलाये ॥

यदि स्वामी शंकराचार्य न होते तो सायणाचार्य वेद भाष्य क्यों कर करते यथार्थ में सच्ची बात तो यह है कि यदि सायण भाष्य न होता तो स्वामी दयानन्द केवल व्याकरण और मनुस्मृति पढ़ कर इधर उधर कुछ मन माना बदल कर एक नया भाष्य कैसे बनालेते और वकील साहिब स्वतः " मुग्धा देवा उत शुना यजन्त इत्यादि " का अर्थ कुछ सायण के अनुसार और कुछ अपने मन माना कैसे करते यदि स्वामी शंकराचार्य अद्वैत वाद के मर्मज्ञ न होते तो रामानुज स्वामी उन्हीं उपनिषदों वेदान्त सूत्र और भगवद्गीता का अध्ययन कर श्रीभाष्यादि लिख के विशिष्टाद्वैत पक्ष का प्रतिपादन कैसे कर सकते और विज्ञान भिक्षु आदि द्वैतवाद पर लेख कैसे चलाते और स्वामी दयानंद को प्राकृत भाषा में द्वैतवाद पर टिप्पणी करने को साहस कैसे हो सकता–यह सब महिमा जगद्गुरु ही की है ॥

इतने लेख से महाशय न समझ सकें तो विस्तार पूर्वक लेख लिखा जावेगा॥

द्वितीय प्रश्न का उत्तर कुछ नहीं बन पड़ा केवल इतना ही लिख कर टाल दिया " द्वितीय प्रश्न प्रथम प्रश्न के ही अन्तर्गत होगया "

मेरे द्वितीय प्रश्न पर प्रसिद्ध सामिधेनी ऋचाओं पर टुक विचारिये—

इदमहं भ्रातृव्यं पंचदशावरेण वाग्वज्रेण बाधे योऽस्मान् द्वेष्टि यंच वयं द्विष्मः…… ..त्रिर्वचनेन हि प्रथमोत्तमयोः पंचदशत्वं सामिधेनीनां भवति ॥ इत्यादिन्यायद०२-१-५९

वात्स्यायनभाष्य भी देखिये ॥ तथा मारण मोहन जादूटोना पर देखिये "ऋग्वेद संहिता" अ० ८ अ० ३ व० १८-१९,, और इस पर सायण भाष्य । यदि आप के पास कोई और भाष्य ऋषि प्रणीत वा आचार्य प्रणीत होवे तो उसे भी दे-

लिये तृतीय और चतुर्थ प्रश्न महाशय ने समझे नहीं फिर विचारिये ॥ पांचवें प्रश्न के विषय में मैं फिर आप से कहता हूं कि आप स० प्रकाश की प्रथमावृत्ति और आवृत्तियों से मिला लें और द्वितीयादि आवृत्तियों को भी आपस में मिलावें फिर उत्तर दीजियेगा ॥

आपका कृपाकांक्षी
विहारी लाल बी० ए० शास्त्री
गंजीपुरा जब्बलपुर सी०पी०

विधवा विवाह का ढोल और आर्यसमाज की पोल ॥

अक्टूबर महीने की गत ३ तारीख को यहां के आर्यसमाजियों ने विधवा विवाह शास्त्रोक्त है ऐसा ढोल बजा कर होली दर्वाजा स्थान रोशनगंज में एकसभा बड़े समारोह के साथ की और उसमें अन्यत्र के भी कई आर्य पण्डिता-भिमानी महाशयों का आह्वान किया गया सन्ध्या के ६ बजने पर उपदेष्टा महाशय उपस्थित हुए और विधवा विवाह शास्त्रोक्त है यह ढोल बजने लगा उसी अवसर पर एक धर्म रक्षक पाण्डे श्रीनाथदत्त सभ्य महोदय नें आकर पंडित सभा के मन्त्री महाशय को सूचना दी कि बड़े आश्चर्य का समय है विधवा विवाह का ढोल बज रहा है और आप के कर्ण गोचर नहीं होता बस फिर क्या था पण्डित सभा तो इस के लिये पूर्व से ही सुसज्जित हो रही थी शीघ्र ही पण्डित मण्डली सहित मन्त्री महाशय सभा स्थान में जा उपस्थित हुए और अवसर पाकर आर्यसमाजियों से प्रस्ताव किया कि विधवा विवाह शास्त्रोक्त है यह आप के ढोल की ध्वनि सर्वथा मिथ्या है कही ऐसा न हो कि इस ढोल के साथ ही आर्यसमाज की भी पोल खुल जाय क्योंकि पंडित सभा इस विषय पर खुले मैदान शास्त्रार्थ करने को उद्यत है जिस की इच्छा हो वो शास्त्रार्थ करे तदनन्तर मथुरा समाज के एक निरक्षर भट्टाचार्य आर्य पाण्ड तम्मन्यमहोदय ने खड़े होकर नष्टेमृते इस पराशर स्मृति के वाक्य से विधवा विवाह को शास्त्रोक्त सिद्ध कर हमारे बहुत से भोले सनातन भाइयों के चित्त को भ्रान्त कर शान्त हुए तदनन्तर स्वामी विरजानन्द सरस्वती विद्यालय के एक रामशरण नामक विद्यार्थी ने सभापति तथा स्वकीय पंडित सभा के मंत्रि महाशय से आज्ञा लेकर उस आर्य पंडितम्मन्य महाशय के नष्टे

सूते प्रमाणा का अक्षरशः ऐसा खंडन किया कि आर्य समाजी परास्त हो गये और सनातन धर्म की जयध्वनि होने लगी और साथ ही सभा विसर्जित हुई अब आर्यसमाजमात्र को मथुरा पण्डित सभा के मन्त्रिमहोदय खुले मैदान चैलेञ्ज देते हैं कि जिस आर्यसमाज की इच्छा हो वह आर्यसमाज विधवा विवाह के विषय में शास्त्रार्थ करले और इस के साथ ही विधवा विवाह के पुष्ट पक्षपाती अग्रसर प० शंकरलाल श्रोत्रिय रईस बिजनौर जिन्हों ने १०००) रुपये का मिथ्या नोटिस दे रक्खा है उनसे भी निवेदन है कि वह भी इस विषय पर शास्त्रार्थ करना चाहें तो भली भांति अपने पांडित्य का परिचय दें। अन्यथा शास्त्रोक्त ढोल ध्वनि को शमन करें शास्त्रार्थ के लिये मथुरा पण्डित मण्डली सज्जित है पुनः तारीख ५ पण्डित सभा के स्थान में पण्डित मण्डली के बड़े प्रभाव शाली व्याख्यान हुए और समाजियों को प्रश्न करने के लिये अवसर दिया गया परन्तु मूर्खतया पराजितत्वाच्च कोई न बोला ॥

आप का पं० छगनलाल शर्मा मथुरा

(श्रीमतुण्डाय नमः)

॥ सत्यार्थप्रकाशेतिपदार्थतथ्यार्थनिरूपणम् ॥

'सत्यार्थप्रकाशः, इति नामधेयनिर्देशत्वमसमञ्जसं तत्रावलोकितानेकमिथ्यार्थलेखप्रसङ्गसङ्गत्यनुरोधात्। (अतोऽस्य मिथ्यार्थप्रकाश इति नाम समीचीनमितिचेन्न सत्यार्थप्रकाशेति-नामधेयत्वेऽप्यस्य (सत्यार्थप्रकाशस्य) मिथ्यार्थ एव प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावसम्बन्धः स्वामि द० नं० सम्मतमहाभाष्यमतसङ्गतप्रमाणप्रामाण्यात् ॥

तथाहि-श्री भगवत्पतञ्जलिकृति-महाभाष्यषष्ठान के 'अव्ययीभावश्चेति सूत्रव्याख्याने-(अव्ययीभावस्याव्ययत्वे प्रयोजनं लुङ्मुखस्वरोपचाराः) इत्यत्र मुखस्वरोपचारौ निवर्त्यमानौ प्रयोजनं-यथा मशकार्थो धूम इति कैयटः।

(अस्यार्थो मशकनिवृत्त्यर्थो धूम इति)

एवमत्रापि–सत्यार्थप्रकाशस्य सत्यनिवृत्त्यर्थः प्रकाश इति शाब्दबोधो यथार्थः प्रतिभातीति ॥

श्रीदयानन्दस्वामिपरम्परासङ्कलितलेखपरामर्श तथ्यातथ्यैकरतपक्षपातनिर्णय विषयविषयिकप्रश्नत्रयम्

(क) स० प्र० पृ० ११ पं० ११–सब्रह्मा सविष्णुः सरुद्रः सशिवः सोऽक्षरः स परमः स्वराट्–सइन्द्रः सकालाग्निः सचन्द्रमाः । कैवल्य उपनिषत्

इस श्रुति से ब्रह्मादि को ईश्वरप्रतिपादन किया ॥

(क) स० प्र० पृ० १५ पं० २–ब्रह्मा विष्णु महादेव को विद्वान् लिखा ॥

(ख) स० प्र० पृ० ३२ पं० २–कोई कहता है कि जो मन्त्र पढ़ के डोरा वा यन्त्र बना देवे तो हमारे देवता उस मन्त्र यन्त्र के प्रताप से कोई विघ्न नहीं होने देते उस को यही उत्तर देना चाहिये कि तुम क्या परमेश्वर के नियम और कर्म फल से भी बचा सकोगे ॥

(ख) स० १९५८ मुद्रित पञ्चमहायज्ञ विधि पृ० ४ पं० ४–इस के अनन्तर गायत्री मन्त्र से शिखा को बांध के रक्षा करे,

(ग) स० प्र० पृ० २४० पं० ९- ते ब्रह्मलोके ह परान्तकाले परामृतात्परिमुच्यन्ति सर्वे ॥

यह मुण्डक उपनिषत् का वचन है वे मुक्त जीव मुक्ति में प्राप्त होके ब्रह्म में आनन्द को तब तक भोग के महाकल्प के पश्चात् मुक्ति सुख को छोड़ के संसार में आते हैं,

पं० २१ जो मुक्ति में से कोई लौटकर जीव इस संसार में न आवै तो संसार का उच्छेद अर्थात् जीव निश्शेष हो जाने चाहिये, ॥

पं० २७ मुक्ति के स्थान में बहुत सा भीड़ भड़क्का हो जायगा क्योंकि वहां

आमद अधिक और व्यय कुछ नहीं होगा बढ़ती का पारावार न रहेगा ॥

(ग) आर्योद्देश्य रत्न माला नं० २९–मुक्ति अर्थात् जन्म मरणादि दुःख सागर से छूट कर सुख स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त होके सुख ही में रहना है वह मुक्ति कहाती है ॥

(पृ० ३०) एवं वेदविरुद्धमतखण्डनेऽपि का तर्हि मुक्तिरिति ००० सर्वज्ञस्येश्वरस्य सर्वानन्दस्य प्राप्त्या जन्ममरणादिसर्वदुःखनिवृत्तिरीश्वरानन्देन सह सदैवावस्थितिर्मुक्तिरिति ॥

स्वा० द० नं० के ये पूर्व लिखित लेख साधक बाधक युक्तियुक्त होने से अ० आ० स० इन में से किस पक्ष को ठीक २ मानते हैं. यदि दोनों को ठीक मानें तो कृपया उन को चाहिये कि उभयपक्ष सिद्धि में संहिता मन्त्रोच्चार दान पूर्वक ही उत्तर दें क्योंकि वे अपने आपस में वेदानुयायी होने का बड़ा भारी दावा रखते हैं–अतः उभयपक्ष (साधक बाधक) को यदि मन्त्रोंद्वारा सिद्ध करेंगे तो वेदानुयायित्व सच्चा होगा अन्यथा खपुष्पवत् जाना जायगा ॥ यदि एक पक्ष को ठीक मानें तो द्वितीय पक्ष में द० नं० की भूल अवश्य माननी होगी क्योंकि 'सत्य का ग्रहण असत्य का त्याग । यह उन का नियम है–

किमधिकं लेखलेखनेनेति

गौरी शङ्कर शास्त्री भट्ट सिटी

ब्राह्मण सर्वस्व भाग ४ सं० १ के पर्यालोचन से ज्ञात हुआ कि आर्यसमाजीय वेदप्रकाश नामक पत्र में श्रीमद्भागवत पर कुछ दोषाभासों का आरोपण किया गया है. उन में एक यह भी है कि „श्रीमद्भागवत में ११ अरब (अर्बुद) वर्ष प्रियव्रत का राज्य करना लिखा है और पुराणों के अनुसार गणना करने से ४ अरब वर्ष ही सृष्टि का समय आता है तो फिर ११ अरब वर्ष किसी का राज्य करना किस प्रकार संभव हो सके. ” यद्यपि इस का यथोचित उत्तर „ब्राह्मण सर्वस्व„ में प्रकाशित हो चुका तथापि पाठकों को इन की विशाल बुद्धि का परिचय देने के लिये इस छोटे से लेख का आरम्भ है ।

बड़े आश्चर्य का विषय है कि आर्यसमाज के प्रधान विद्वान् कहलाने

वाले शुरू की पढ़ाई अर्थात् गिनती एक के हिसाब से भी निरे अनभिज्ञ रहते हैं और इस पर भी पुराणादि पर आक्षेप करने का साहस इन के लिये मानो खेल है। वास्तव में तो जब इस समाज के जन्मदाता स्वामी दयानन्द जी की भी गणितानभिज्ञता अनेक महाशयों ने अच्छे प्रकार से प्रगट करदी है तो उन के अनुयायी लोगों के विषय में कहना ही क्या है !

और इन वेचारों की शिक्षा का द्वार भी तो स्वामी जी ही रोक गये हैं कि वेद के सिवाय छांटे ग्रन्थों पर इन की दृष्टि ही नहीं जाने पाती तब सब शास्त्रों की परिभाषा से अनभिज्ञ रहकर वेद, पुराणों में जो अर्थ के अनर्थ करें उस में इन के लिये आश्चर्य ही क्या।

पाठकगण ! संस्कृत भाषा में संख्या संबन्धि नियम लीलावती में इस प्रकार लिखा गया है।

एकदश शतसहस्रायुतलक्षप्रयुतकोटयः क्रमशः अर्बुद मब्जं खर्वनिखर्वमहापद्मशङ्कवस्तस्मात् । १ । जलधिश्चान्त्यं मध्यं परार्द्धमिति दशगुणोत्तराः संज्ञाः संख्यायाः स्थानानां व्यवहारार्थंकृताः पूर्वै. । २ ।

अर्थात् एक से दूसरा दश गुणित होवै—इस क्रम से यह अठारह स्थान संस्कृत भाषा में माने गये हैं

एक, दश, शत, सहस्र, अयुत, लक्ष, प्रयुत, कोटि, अर्वुद, अब्ज, खर्व, निखर्व, महापद्म, शङ्कु, जलधि, अन्त्य, मध्य, परार्द्ध, ।

इस से सब लोग अच्छे प्रकार से समझ सकते हैं कि यहां दश कोटि का नाम अर्बुद है क्योंकि कोटि से आगे दश गुणित क्रम में वही लिखा गया है और सौ कोटि का नाम अरब जो हिन्दी भाषा में माना गया है वह अर्बुद शब्द का अपभ्रंश नहीं किन्तु अब्ज शब्द का अपभ्रंश है बस, इस हिसाब से ११ अर्बुद वर्ष जो श्रीमद्भागवत में लिखे गये है वह हिन्दी में एक रब दश कोटि कहे जा सकते हैं जो कि इस श्वेत वाराह कल्प में भी वैवस्वत मन्वन्तर के पहले ही व्यतीत हो चुके फिर इस विषय में असंभवत्व की शङ्का

कितनी असम्भव है यह पाठक स्वयं जान सक्ते हैं । इस शङ्का का मूल सिर्फ समाजियों का पूर्वोक्त प्रमाण के अज्ञान से अरब शब्द को अर्बुद का अपभ्रंश मानना है जो कि कथमपि शास्त्र सम्मत नहीं हो सकता । क्या ही अच्छी बात होती यदि समाजी लोग पहले कुछ शास्त्र में श्रम कर के आक्षेप का झंडा उड़ाना सीखते इस ही प्रकार के निर्मूल और अनभिज्ञता पूर्ण प्रश्न इन लोगों के देखने से सनातनधर्मानुयायी विद्वज्जनों को उन का उत्तर देने में लेशतोपि प्रवृत्ति नहीं होती । यदि समाजी वास्तविक विचार का कुछ भी पक्षपात रखते हों तो अवश्य कुछ शास्त्रों में श्रम करना सीखें इति अलमधिकेन ।

पं० गिरधरशर्मा माथुर चतुर्वेदी ॥

व्याकरणाचार्य, न्यायशास्त्री ॥

संस्कृतरत्नाकर संपादकान्यतमः

श्रीः

धर्मो जयतु नः सदा ।

सनातन धर्ममहासभा, प्रयाग ।

परब्रह्म परमात्मा के अनुग्रह से इस भारतवर्ष में लगभग बीस करोड़ प्राणी सनातन धर्म के अनुयायी हैं, और जन्म से लेकर जीवन के सब प्रधान कार्यों में उसी सनातन धर्म की विधि के अनुसार अपने कार्य करते हैं । प्राचीन समय में सर्वसाधारण को इस धर्म का उपदेश करने और सन्मार्ग में चलाने का प्रबंध बहुत उत्तम था । किन्तु समय और देश की दशा के परिवर्तन से वह प्रबंध अब शिथिल हो गया है ।

सनातन धर्म का संपूर्ण कोष देववाणी संस्कृत में है और उस के पढ़ने और जानने वालों की संख्या दिन दिन कम होती जाती है । इसी कारण धर्म के आचार्य और उपदेष्टाओं की संख्या भी कम होती जाती है । जो पूजनीय आचार्य और उपदेष्टा ऐसी दशा में भी अपने कर्तव्य पर आरूढ़ हैं, वे भी धर्म में लोगों की श्रद्धा का ह्रास देखकर मन्दोत्साह हो रहे हैं । परिणाम यह है कि यद्यपि भारतवासी आर्यसन्तान को ईश्वर ने सब से उत्कृष्ट

भक्ति और ज्ञानसंपन्न धर्म का बोध दिया है, तथापि उन में से बहुत अधिक अंश प्राणी वस्तुतः अपने जीवन में उस धर्म के साधन का वैसा लाभ नहीं उठा रहे हैं जैसा वे उठा सक्ते हैं, और धर्म के साधन में शिथिल होने से वे अनेक प्रकार की सामाजिक और अर्थ सम्बन्धी आपत्तियोंसे पीड़ित क्षीणशक्ति दुर्बलेन्द्रिय अल्पायु और दुःखी हो रहे हैं। भारतवर्ष में कोई जाति ऐसी दुर्बल नहीं है जैसी कि हिन्दू जाति है। किसी जाति के प्राणी इतनी संख्या में अकाल और प्लेग से काल के कलेवा नहीं होते जितनी सख्या में हिन्दू होते हैं। और किसी जाति के इतने अनाथ बालकों को दूसरे मत में नहीं ले जाते हैं जितने हिन्दू जाति के बालकों को। यह सब हम लोगों के धर्म से विमुख होने का फल है। महर्षि वेदव्यास लिख गये हैं-

शक्तिमानप्यशक्तोऽसौ धनवानपि निर्धनः।
श्रुतवानपि मूर्खश्च यो धर्मविमुखो नरः॥

और जितने गंभीर विचारशील पुरुष हैं उन को दिन दिन यह विश्वास दृढ़ होता जाता है कि इन की दशा के सुधार की मूल औषधि धर्म है । महर्षि नारद का यह प्रसिद्ध उपदेश-

"धर्मादर्थश्च कामश्च,"-तथा कंडधार का यह वचन-

विद्या रूपं धनं शौर्यं कुलीनत्वमरोगिता।
राज्यं स्वर्गश्च मोक्षश्च सर्वं धर्मादवाप्यते॥-

त्रिकाल में सत्य है और इसी का अनुसरण करने से आर्य सन्तान फिर अपनी योग्यता के अनुरूप सुख और संपत्ति को प्राप्त होंगे। इस विचार के अनुसार अनेक सनातन धर्मानुयायी सज्जन अनेक वर्षों से अनेक स्थानों में धर्म की उन्नति और प्रचार के लिये सराहनीय यत्न करते आये हैं और कितने स्थानों में सनातन धर्मसभा धर्ममंडल धर्मसमाज हरिसभा आदि समारंभ हुए हैं और हो रहे हैं और अपने अपने कार्य में थोड़ी वा बहुत सफलता प्राप्त कर रहे हैं। किन्तु इन यत्नों से अभी धर्म की उन्नति चाहने वाले पुरुषों को संतोष नहीं होता। और दिन दिन यह इच्छा प्रबल होती है और फैलती जाती है कि भारतवर्ष के सब प्रान्तों के सनातन धर्मानुयायी सज्जनों की सम्मति और सहायता से एक वृहत् जातीय धर्म समारंभ किया जाय जिस

के द्वारा इस पवित्र धर्म की रक्षा और उन्नति का स्थायी प्रबंध हो सके। जिस से सनातन धर्मानुयायियों को इस धर्म का उत्तमोत्तम उपदेश मिलाकरे और उस के प्रभाव से दिन प्रतिदिन उन के मन और बुद्धि पवित्र हों। उनको संसार में सुख ईश्वर के चरण कमल में दृढ़ प्रीति और अन्त में ज्ञानी वा भक्तगण वाञ्छित मुक्ति को प्राप्त हो। बहुत दिनों से सनातन धर्म के कुछ प्रेमियों की यह अभिलाषा चली आई है कि एक समय किसी पवित्र स्थान में सनातन धर्म के सब पूज्यपाद आचार्य उपदेष्टा और उन के धर्म ज्ञान संपन्न शिष्यवर्ग एकत्र हों और उन से इस मनोरथ के पूरा करने का उपाय पूछा जाय और उनकी आज्ञा के अनुसार उस के साधन का उद्योग किया जाय। ऐसा जान पड़ता है कि इस धर्म समारम्भ का समय अब आगया है।

इस वर्ष आगामी माघ मास में तीर्थराज प्रयाग में द्वादश वार्षिक कुम्भ का महापर्व होगा। और उस अवसर पर सनातन धर्म के अनुयायी कई लाख प्राणी त्रिवेणी के संगम में स्नान करने को यहां आवेंगे। पूर्व काल में सनातन धर्म के प्रसिद्ध प्रसिद्ध पूजित आचार्य और सहस्रों वन्दनीय साधु सन्त महात्मा धर्मपरायण पण्डित और धर्म के प्रेमी राजा महाराजा और अकिंचन भागवतजन ऐसे समय यहां आये हैं पुराणों के देखने से स्पष्ट है कि ऐसे ही बड़े पर्वों पर बड़े तीर्थों में जब ऋषि मुनिजनों का समागम होता था तब प्रायः धर्म का परामर्श और उपदेश होता था। इस विचार से आगामी कुंभ का समय प्राचीन मर्यादा के अनुसार भी इस धर्मसमारंभ के लिये उपयुक्त प्रतीत होता है। इसी लिये यह विचार किया गया है कि आगामी माघ मास में तीर्थराज प्रयाग में माघकृष्ण ११ से माघ शुक्ल ५ पर्यन्त एक सनातन धर्म की महासभा का अधिवेशन हो। इस संकल्प को सफल करने के लिये प्रयागवासी सनातन धर्मानुयायी सज्जनों ने भाद्रपद शुक्ल ६ को त्रिवेणी के तट पर वेदपाठ पूर्वक ईश्वर का स्मरण और पूजन करके एक प्रबंध कारिणी सभा स्थापित की है, जिसके सभापति श्रीमान् राजा वंशपतिसिंह जी (राजा बारां) हैं, उपसभापति राय महावीरप्रसादनारायणसिंह बहादुर (बरांव) पण्डित लक्ष्मीनारायण व्यास, तथा पंडित वेणीमाधव भट्टाचार्य हैं और कोशाध्यक्ष राय रामचरण दास बहादुर और मन्त्री निम्न लिखित जन हैं। इस स्थानीय सभा का यही कर्त्तव्य है कि यहां के अधिवेशन का प्रबंध

करे। यह सभा अति विनीत भाव से समस्त सनातन धर्म के रक्षक और पोषक आचार्यों से प्रार्थना करती है कि वे अपने धर्म के अनुयायी जनों पर अनुग्रह करके निर्दिष्ट समय पर यहां पधारें और उन को अपने पवित्र दर्शन और उपदेश से सनाथ करें। सनातन धर्म के अन्य उपदेष्टाओं से तथा धर्मज्ञ और धर्म परायण शास्त्री और विद्वज्जनों से भी विनय पूर्वक यही निवेदन है। तथा सनातन धर्मानुयायी समस्त राजा महाराजा और श्रीमन्तों से भी निवेदन है कि वे निर्दिष्ट समय पर यहां आकर प्रस्तुत धर्म समारंभ में उपस्थित होकर अपने धर्म और जाति के अभ्युदय में सहायक हों॥

महासभा के उद्देश्य ये हैं—

सनातन धर्म की वर्त्तमान अवस्था पर समस्त सनातन धर्मानुयायी आर्य सज्जनों का ध्यान दिलाना। और इस धर्म की रक्षा और उन्नति के लिये उनकी एक महासमिति स्थापन करने का यत्न करना।

दूसरा उद्देश्य सनातन धर्म के अनुयायियों में सम्प्रदाय और मार्गों में भेद हैं। किन्तु इन भेदों के रहते भी उन में वस्तुतः धर्म विषय में कितना ऐक्य है, इस बात पर लोगों का ध्यान दिलाना। अद्वैत विशिष्टाद्वैत द्वैतादि समस्त सिद्धान्तों में मुख्य सांप्रदायिक उपदेश अवश्य भिन्न हैं। किन्तु सदाचार ज्ञान भक्ति वैराग्य अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य धृति क्षमा अलोभ दया दान शम दम शौच संतोष तितिक्षा तप स्वाध्याय तीर्थ सेवन यम नियम साधन चतुष्टय आवागमन और कर्मफलवाद आदि सर्वसम्मत हैं। मूल धर्म ग्रंथ भी सर्वसाधारण हैं। यह कहना अनुचित न होगा कि जो धर्म वा उपदेश सर्वसाधारण हैं वे सनातन धर्म महावृक्ष के स्कन्ध के समान हैं और उस के मूल सेचन से सम्पूर्ण वृक्ष हरा भरा और प्रफुल्लित रहेगा। यदि ये विचार धर्म के आचार्यों और समाज के नेताओं की दृष्टि में आदर के योग्य समझे जावें तो यह संभव जान पड़ता है कि सब सम्प्रदाय और मार्गों के आचार्य और अनुयायी सर्वसाधारण धर्म के उपदेश और प्रचार के लिये मिलकर एक यत्न करें। और "परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ" इस भगवद्वाक्य के पालन का लाभ उठावें।

तीसरा उद्देश्य सनातन धर्म के परम पवित्र प्रामाणिक ग्रन्थों की संख्या बहुत अधिक है। वेद वेदाङ्ग धर्मशास्त्र इतिहास पुराण आदि ग्रन्थ समूह के अध्ययन का समय और योग्यता अब बहुत थोड़े पुरुषों को प्राप्त होती है। ईश्वर के अनुग्रह से अब तक हमारे देश में कुछ विद्वान् और तपस्वी ऐसे वर्तमान हैं जो इस समस्त शास्त्र समूह को अथवा उस के बहुत कुछ भाग को जानते हैं और उन के सम्बन्ध में उपदेश कर सकते हैं। किन्तु शोक है कि ऐसे विद्वानों की संख्या दिन प्रति दिन घटती जाती है। और यद्यपि ऐसे विद्वानों की संख्या का बढ़ाना इस महासभा का एक प्रधान उद्देश्य होगा, तथापि यह आशा नहीं की जा सकती कि कभी सर्व साधारण में बहुत से लोग इस समस्त शास्त्रसमूह का अनुवाद भी पढ़ सकेंगे। विद्या का अभाव पुस्तकों का अभाव और समय का अभाव अथवा आलस्य उन में से बहुतों को धर्म के ग्रन्थों के पढ़ने से वञ्चित रक्खेगा। इस के अतिरिक्त यद्यपि धर्मशास्त्र समस्त कल्याणकारी और आदरणीय है, तथापि प्रायः सब ग्रन्थों में कुछ अंश और और अंशों से विशिष्ट हैं। और अर्थ के गौरव भाव के उत्कर्ष अथवा उपदेश के प्राचुर्य अथवा ज्ञान वा भक्ति के उद्रेक के हेतु से धर्मनिष्ठ साधु विद्वानों के हृदय को विशेष रीति से आप्यायित करते हैं। ज्ञानी और भक्तगण इन विशिष्ट अंशों का विशेष प्रीति के साथ पठन वा मनन करते हैं। धर्मशास्त्र के दुर्विगाह्य और अनन्त पार सागर में जिन सुकृती तपस्वी विद्वानों ने वारंवार पुण्यावगाहन किया है। उन्हीं को यह विदित है कि समुद्र के किस भाग में उपदेशामृत का अगाध सञ्चय वा ज्ञान प्रदीपमणि मौक्तिक का पुञ्ज वा भक्तिरस का परम पावन परम प्रेममय मधुरस्निग्ध प्रवाह बह रहा है। जिन प्राणियों ने इतना सुकृत का संचय नहीं कर रक्खा है कि उन को इस शास्त्र तीर्थ में अवगाहन वा उस के दर्शन का भी सौभाग्य प्राप्त हो उन के लिये यह अनिर्वचनीय आनन्द और कल्याण की बात होगी कि इस धर्म के कर्णधार महात्माजनों से प्रार्थना की जाय कि वे संसार पर करुणा करके शास्त्रार्णव के अवगाहन से प्राप्त मौक्तिक मणियों की एक ऐसी माला बना दें कि उस को हृदय में धारण करके और उसके द्वारा ईश्वर का स्मरण करके मनुष्य धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों पदार्थों को प्राप्त कर सकें। यह संभव है कि इन महात्मा विद्वानों की

सम्मति और सहायता से एक ऐसा संग्रह किया जाय जिस में सनातन धर्म के सब आवश्यक उपदेश सर्व साधारण धर्म वर्णधर्म आश्रम धर्म स्त्री पुरुष धर्म राज धर्म आवागमन और कर्मफलवाद तथा ज्ञान भक्ति वैराग्य के वे सब देश और वे पवित्र कथाएं संगृहीत की जांय जिन का जानना समस्त सनातन धर्मानुयायी पुरुष और स्त्री बालक युवा और वृद्धों के लिये इस लोक में सुख और परलोक में परम कल्याण का साधक हो। धर्मानुयायी सज्जनों की दृष्टि में इस प्रकार के एक संग्रह की आवश्यकता चिरकाल से चली आरही है और उसकी पूर्ति के लिये पिछले तीस वर्षों में भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में अनेक सज्जनों ने अनेक संग्रह प्रकाशित किये हैं। प्राचीन समय में भी इस प्रकार के कई संग्रह किये गये हैं। इन में से प्रायः सब ही अपने क्रम पर उत्तम और उपकारी हैं। किन्तु अब तक सनातन धर्म के सम्मानित आचार्य और सब प्रान्त के सनातन धर्मानुयायी विद्वानों की संमति और सहायता से एकसे धर्मसंग्रहके संगृहीत करने की आवश्यकता है जिसको बालक युवा वृद्ध नर और नारी के हाथमें देकर सनातन धर्मानुयायी जनों को यह विश्वास हो जाय कि जो इस ग्रन्थ को पढ़ेगा उसको न केवल धर्म के सब मुख्य मुख्य सिद्धान्तों का परिचय हो जायगा, किन्तु यदि वह अज्ञान वा आलस्य से अथवा अभाग्यवश इस ग्रंथ के अतिरिक्त अन्य कोई ग्रंथ को न भी पढ़सके. तौभी वह संग्रह उसको धर्मके साधन और ईश्वर का ज्ञान वा भक्ति के प्राप्त करनेमें पूर्ण रीतिसे सहायक हो। किस प्रकार का संग्रह करना इष्ट है इसके सूचन करने की दृष्टिसे एक ऐसा संग्रह किया गया है और वह छपवाकर महासभा के अधिवेशनसे एकमास पहिले सब पूजनीय आचार्यों और प्रसिद्ध विद्वानों की सेवामें भेज दिया जायगा जिसमें वे उसको सुभीतेके साथ देखकर उस को पूर्ण और सर्वांगसुन्दर करने के लिये समय पावें। आचार्यों और विद्वानों की सम्मति के साथ यह संग्रह महासभा के सामने रक्खा जायगा. और यदि वह स्वीकार करने के योग्य समझा गया तो उस का प्रचार किया जायगा. और देश की प्रधान प्रधान भाषाओं में उस का अनुवाद भी छापकर प्रत्येक प्रान्तमें प्रकाशित किया जायगा।

चौथा उद्देश्य यह होगा कि एक ऐसी स्थायी सभा स्थापित की जाय कि जो संग्रह को संस्कृत में और उस के अनुवाद को भारतवर्ष की प्रधान प्र-

धान भाषाओं में प्रकाशित करे । और धर्मशास्त्र के आचार्य और उपदेशकों के पढ़ाने और उन की परीक्षा का एक ऐसा प्रबन्ध करे जिस में शुद्धचरित्र ब्रह्मचर्यस्थो शम दम सम्पन्न धर्मशास्त्र के ज्ञान में पूर्ण और उसके उपदेश करने में कुशल धर्म के आचार्य और उपदेशकों की संख्या दिन दिन बढ़े । यह विचार है कि यदि आचार्य और विद्वानों की सम्मति हुई तो धर्म के उपदेशकों को आधुनिक विद्या का भी उतना परिचय कराया जाय जितना समय के विचार से उनके प्रतिष्ठित के साथ अपने कार्य करने में उपयोगी हो । इस उद्देश्य के साधन के लिये एक ब्रह्मचर्याश्रम और विद्यालय स्थापित करना आवश्यक जान पड़ता है । और यदि यह प्रस्ताव सनातनधर्मानुयायी सज्जनों के विचार से स्वीकार करने के योग्य ठहरा. तो पूर्ण आशा और विश्वास है कि ऐसा एक विद्यालय शीघ्र स्थापित हो जायगा और सनातनधर्म की रक्षा और प्रचार का सबसे बड़ा द्वार होगा । आशा है कि सनातनधर्म के आचार्य और विद्वान् तथा राजा महाराजा और अन्य श्रीमन्त इन प्रस्तावों पर विचार करेंगे और यदि इनका अनुमोदन करेंगे तो इन के सफल करने के लिये यत्न और सहायता करेंगे । सब सनातनधर्मसभाओं से तथा सनातनधर्मानुयायी सज्जनों से जो अपने धर्म की रक्षा और उन्नति चाहते हैं. प्रार्थना है कि कृपा कर वे सभा को इस बात की संमति दें कि उनके विचार में ऊपर लिखे उद्देश्य धर्म की रक्षा और उन्नति के लिये उपयोगी हैं वा नहीं. तथा यह भी कि यदि वे उपयोगी हैं तो उन की सफलता के लिये क्या यत्न करना चाहिये । यह भी निवेदन है कि जो सभाएं महासभा के उद्देश्यों का अनुमोदन करें वे अपनी ओर से एक या अधिक प्रतिनिधि महासभा में भेजें । और सब सभाओं और सज्जनों से प्रार्थना है कि वे कृपाकर शीघ्र अपने अपने नगर वा प्रान्त के उन महात्मा और विद्वानों का नाम लिख भेजें जिन को उन के विचार में विशेष आग्रह के साथ निमन्त्रण करना उचित है और जिन से संग्रह के पूर्ण करने में सहायता की प्रार्थना करनी चाहिये । आशा है कि सब सनातनधर्मानुयायी सभा और सज्जन इस धर्म की प्रार्थना पर ध्यान देंगे और सभा को अपनी संमति से शीघ्र अनुगृहीत करेंगे ।

भारतीभवनप्रयाग. मदनमोहन मालवीय ।

आश्विन १९६२ । श्रीकृष्ण जोशी ।

REGISTERDNO242.
ब्रा०स० सम्बन्धी पत्रादि पं० भीमसेन शर्मा सम्पादक ब्रा०स० इटावा के पते से भेजिये

श्रीगणेशायनमः ॥

ब्राह्मण सर्वस्व ।

THE
BARHMAN SARYSAWA

आर्य्यम्मन्यसदार्य्यकार्य्यविरहा आर्य्यास्त्रयीशत्रव,
स्तेषांमोहमहान्धकारजनिता–ऽविद्याजगद्विस्तृता ।
तन्नाशायसनातनस्यसुहृदो धर्मस्यसंसिद्धये,
ब्रादिस्वान्तमिदंसुपत्रममलं निस्सार्य्यतेमासिकम् ॥
धर्मोधनंब्राह्मणसत्तमानां, तदेवतेषांस्वपदप्रवाच्यम् ।
धनस्यतस्यैवविभाजनाय, पत्रप्रवृत्तिःशुभदासदास्यात्॥

भाग ४] मासिकपत्र मासाङ्क [५

निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः
पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥

पं० भीमसेन शर्मा द्वारा सम्पादित होकर
ब्रह्म यन्त्रालय–इटावा में
मुद्रित होकर प्रकाशित होता है ॥
संवत् १९६२ वि० ३० सितम्बर सन् १९०५ ई०

ब्राह्मणसर्वस्व का अगाऊ वार्षिक मूल्य डाकव्यय सहित २।) है

विज्ञापन छपाने बंटाने के लिये नियम ॥

१–जो विज्ञापन ब्रा० स० में छपें वा बांटे जावें उन के सत्यमिथ्या के उत्तर दाता विज्ञापन वाले ही समझे जायंगे। शोच समझ के व्यवहार करें।

२–ब्रा स० में एक वार कोई विज्ञापन एक १ पेज से कम छपावे तो =)॥ के हिसाब से लिया जायगा। तीन मास तक =)। ६ मास तक =) एक व तक –)॥ प्रति पङ्क्ति प्रतिमास लगेगा।

३–एक वार एक पेज पूरा छपाने पर ३) लगेगा। १ पेज का तीन मास तक ७) छः मास तक १२) और १ वर्ष तक २०) लगेगा।

४–जिस किसी को विज्ञापन बंटाना हो वह ब्रा० स० के दफ़्तर से पूछ कर ब्रा० स० का कोड़ पत्र और तारीख़ छापनी चाहिये। ४ मासे तक का विज्ञापन ४) में ८ मासे तक का ५) में और १ एक तोला तक का ६) में बांटा जायगा। रु० छपाई और विज्ञापन बंटाई का पहिले लिया जायगा॥

ब्राह्मणसर्वस्व के नियम॥

१–यह मासिकपत्र साढ़े छः फारम ५२ पेज रायल साइज़ का प्रतिमास व अन्तिम तारीख़ को निकलता है॥

२–इस का वार्षिक मूल्य डाकव्यय सहित बाहर के ग्राहकों से २।) सवा दो रुपया अगाऊ और इटावे के ग्राहकों से २) लिया जाता है॥

३–अगला अं० पहुंच जाने पर पिछला न पहुंचने की सूचना जो ग्राहक लिखेंगे उनको पिछला अं० विना मूल्य फिर से भेजा जायगा। देर होने पर द्विवार अं० =) प्रति के हिसाब से मिलेंगे।

४–राजा रईस लोगों से उन के गौरवार्थ ५) वार्षिक मूल्य लिया जायगा॥

५–ब्रा० स० का द्वितीय अंक पहुंचने से पहिले २) ही लिया जायगा। द्वितीय अं० पहुंचने पर २–) तृतीय अं० पहुंचने पर २=) चौथा अं० पहुंचने पर पांचवें अं० पर २।) पश्चात् मूल्य न आने पर छठा अं० २।–) का वी० पी० जायगा

६–जो ग्राहक किसी कारण अग्रिम मूल्य न देकर वायदा करेंगे उन से उसी अवधि की अवधि का मूल्य लिया जायगा। जैसे १२वां अंक पहुंचने पर २॥≡)

७–जो पहिला अंक नमूना का मंगावें वे ≡) के टिकट भेजें वा।) वी० पी मगावें यदि वे ग्राहक होंगे तो उन को नियत मूल्य में ≡) मुजरा दिया जायगा।

८–मूल्य भेजते समय ग्राहक लोग अपना नम्बर अवश्य लिखा करें। चिट्ठी पत्री नागरी वा अंगरेज़ी में भेजा करें उर्दू के हम उत्तर दाता नहीं हैं।

९–कहीं बदली आदि के कारण स्थानान्तर में जावें तो अपना पता अवश्य बदलवावें। अन्यथा अंक न पहुंचने के उत्तरदाता हम न होंगे॥

१०–जो ग्राहक लोग अन्य ग्राहक करावेंगे उनको यथोचित कमीशन मिलेगा और १० ग्राहक कराने वाले को १ मासिक पत्र बिना दाम मिला करेगा॥

श्रीगणेशायनमः ॥

॥ ब्राह्मणसर्वस्व ॥

भाग ४] उत्तिष्ठतजाग्रतप्राप्यवरान्निबोधत [अङ्क ५

यत्रब्रह्मविदोयान्ति दीक्षयातपसासह ।
ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्माब्रह्मददातु मे ॥

॥ मङ्गलाचरणम् ॥

अभिवृष्टाओषधयः प्राणेनसमवादिरन् ।
आयुर्वैनःप्रातीतरः सर्वानःसुरभीरकः ॥ ६ ॥
नमस्ते अस्त्वायते नमोअस्तुपरायते ।
नमस्ते प्राण ! तिष्ठत आसीनायोततेनमः ॥७॥अथ०११।४॥

अ०—वर्षाम्बुसम्भूता ओषधयः स्वोत्पादकेन पितृभूतेन प्राणेन सह संवादं कुर्वन्ति । प्राणं प्रति वदन्ति—वै निश्चयेन नोऽस्मभ्यमायुस्त्वं प्रातीतरः। जीवनं ददासि सर्वांश्च नोऽस्मान्सुरभीः शोभनगन्धयुक्ताअकः करोषि।अतो हे जीवनदातः! आयतेऽस्मदभिमुखमागच्छते ते तुभ्यं नमः। परायतेऽस्मत्तः परं गच्छते ते तुभ्यं नमः। तिष्ठते ते तुभ्यं नमउतआसीनाय तुभ्यं नमः। प्राणाश्रयेणैव शरीराणि गच्छन्ति तिष्ठन्ति—आसते च तस्मात्प्राणएव सर्वकर्महेतुर्विज्ञेयः ॥

भा०—(अभिवृष्टाः) वर्षा के जल से प्रकट हुईं (ओषधयः) घास वनस्पत्यादि (प्राणेन) अपने उत्पादक पिता रूप प्राण से (समवादिरन्) संवाद करतीं अर्थात् कहती हैं कि (वै) निश्चय कर (नः) हमारे लिये तुम (आयुः) जीवन (प्रातीतरः) देने वाले हो आप ही हम को जीवित रखते हो और

(नः सर्वाः) हम सब को (सुरभीः) सुगन्ध युक्त तुम ही (अकः) करते हो। इस से हे जीवन दाता प्राण (आयते ते नमोऽस्तु) हमारी ओर आते हुए तुम को नमस्कार हो तथा (परायते नमोऽस्तु) इस से फिर के स्वर्ग को जाते हुए तुम को नमस्कार हो। हे (प्राण) प्राण (तिष्ठते ते नमः) खड़े हुए तुम को नमस्कार हो (उतासीनाय ते नमः) और बैठे हुए तुम को नमस्कार प्राप्त हो। प्राण के सहारे से ही शरीर चलते खड़े होते और बैठते हैं इस कारण प्राण को ही सब कर्मों का हेतु जानो। यहां अध्यात्म में प्राण नाम रूप शिव जी की उपासना वेद में दिखायी गयी है क्योंकि सन्ध्यादिक कर्मों में शिव जी का ध्यान शिर में करना लिखा है और प्राण का स्थान भी विशेष कर शिर ही है। इस लिये यह सब प्राण स्तुति शिव स्तुति के अन्तर्गत जानो।

अंक ४ पृ० १६८ से आगे स्मार्त्तधर्म मीमांसा

तथा मनु० अ० ३।१९।

वृषलीफेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्य च ।
तस्यांचैवप्रसूतस्य निष्कृतिर्नविधीयते ॥ १ ॥

व्यभिचारिणी वा वेश्या के मुख से मुख लगा के उसके श्वास को सूंघते हुए जिसने व्यभिचार किया तथा जो व्यभिचार से उत्पन्न हुआ ऐसे पुरुषों की प्रायश्चित्त से भी शुद्धि नहीं होती अर्थात् ऐसे लोग पतितही हो जाते हैं।

पाठक महाशय ? देखिये मनु जी मद्य मांस और मैथुन का कैसा साफ़२ निषेध करते हैं जिन मनुजी को हमारे गोस्वामी दोष लगाते हैं कि मद्यमांस मैथुन में कुछ दोष नहीं है पर न करे तो अच्छा । यदि गोस्वामी ने मनु के टीकाकारों का मत देखा होता तो भी कदाचित् ठीक अर्थ समझ लेते। अब (नमांसभक्षणे दोषो०) का अर्थ सुनिये । जब कि साफ़ २ मद्य मांस और मैथुन का निषेध मनु जी ने कर दिया तो उदासीनता की कल्पना तो अब हो नहीं सकती तब उक्त श्लोक का यही अर्थ ठीक घटता है कि वेद शास्त्र में विहित मद्य मांस और मैथुन में दोष नहीं है क्यों कि जिसका विधान किया गया वह धर्म कोटि में आगया । वाजपेय यज्ञमें सुरा के ग्रहों का विधान है। सौत्रामणी यज्ञ में सुरा नाम मद्य का विधान है। अग्निष्टोमादि यज्ञों में अग्नीषोमीय आदि पशु का विधान और वहां शेष मांस भक्षण का भी विशेष विधान स्पष्ट रूप से विस्तार के साथ किया गया है। मैथुन का विधान विवाह पूर्वक ऋतु काल में स्वभार्या के साथ है ही।